CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

संस्कृत-अकाडमी ग्रन्थमाला - 77

अभिज्ञानशाकुन्तल

कृतिसमीक्षा से पाठसमीक्षा

तृतीय अङ्क के विशेष सन्दर्भ में

(राष्ट्रियपाण्डुलिपि मिशन् द्वारा आयोजित तत्त्वबोधव्यख्यानमाला में प्रस्तुत प्रबन्ध)

प्रो. वसन्त कुमार म. भट्ट

संस्कृत अकाडमी
राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानेन मानिता आदर्शशोधसंस्था
उस्मानिया विश्वविद्यालयः, हैदराबाद्

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

संस्कृत अकादमी ग्रन्थमाला –77

अभिज्ञानशाकुन्तल
कृति-समीक्षा से पाठ-समीक्षा
तृतीय अङ्क के विशेष सन्दर्भ में

(राष्ट्रियपाण्डुलिपि मिशन् द्वारा आयौजित
तत्त्वबोधव्याख्यानमाला में प्रस्तुत प्रबन्ध)

लेखकः
वसन्तकुमार म. भट्ट

प्रधान सम्पादकः
श्रीनिवासः वरखेडी
निदेशकः

संस्कृत अकादमी
राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानेन मानिता आदर्शशोधसंस्था
उस्मानिया विश्वविद्यायः
हैदराबाद्
2010

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

Sanskrit Academy Series- 77

abhijñānaśākuntala kṛtisamīkṣā se pāṭhasamīkṣā

(A lecture delivered under Tattvabodha Lecture series organized by National Manuscript Mission, New Delhi)

By
Vasant Kumar Bhat

General Editor
Shrinivasa Varakhedi
Director

SANSKRIT ACADEMY
(Adarsha Shodha Sanstha, Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi)
Osmania University
Hyderabad - 500 007
Phone & Fax 040-27070281
Email – sanskritacademyhyd@gmail.com

2010

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

Sanskrit Academy Series – 77
Abhignana Shakuntalam- Kriti Samiksha se Patha Samiksha by Prof. Vasant Kumar Bhat

ISBN – 978-93-80171-13-5

This publication has been brought out with the financial assistance of Rashtriya Sanskrit Sansthan (Deemed University), Ministry of Human Resource Development Govt. of. India, New Delhi.

Publisher & General Editor: Dr. Shrinivasa Varakhedi
Director, Sanskrit Academy

Coordinator : Dr. V. Subrahmanyam
Dy. Director, Sanskrit Academy

© Sanskrit Academy

Year : 2010

Copies : 300

Price : Rs/- 65
$ 6

Copies can be had from:
Director
Sanskrit Academy
Adarsha Shodha Sanstha
Osmania University Campus,
Hyderabad – 500 007
Phone & Fax: 040 - 27070281
Email: sanskritacademyhyd@gmail.com
Web: osmania.ac.in\sanskritacademy

Printed at: Karshak Art Printers, Hyderabad

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

सम्पादकीयम्

यह मेरा सौभाग्य मानता हूँ कि राष्ट्रियपाण्डुलिपिमिशन्-द्वारा आयोजित तत्त्वबोधव्याख्यान-शृङ्खला में "अभिज्ञानशाकुन्तल के पाठसमीक्षा" इस विषय पर उद्बोधक एवं अनुसन्धानपूर्ण व्याख्यान के द्वारा पण्डित वसन्तकुमार भट्टजी का परिचय प्राप्त करने का और वह विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान प्रकाशित करने का अवसर मुझे मिला। आचार्य वसन्तकुमार भट्ट आधुनिक संस्कृतशोध के क्षेत्र में एक विशिष्ट विद्वान् है। मातृका शोधन से गणकीकरण तक, पाठशोध से कृतिसमीक्षा तक, पाणिनीय से आधुनिक भाषाविज्ञान तक उन का योगदान अनितर साधरण है।

संस्कृत-अकाडमी का ग्रन्थमाला में इस लेख का प्रकाशन हेतु अनुमति प्रदान के कारण मै संस्था की ओर से आचार्य वसन्तकुमार भट्ट जी को धन्यवाद देता हूँ।

इस व्याख्यान का आयोजन के लिए वित्तीय सहायता राष्ट्रियपाण्डुलिपिमिशन से मिली। इस केलिए भी मिशन् के निदेशक महोदया को भी हम आभार है।

श्रीनिवासः वरखेडी

सम्पादक

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

भूमिका

पाठसमीक्षा की प्रक्रिया में दो स्तर होते है- 1. निम्न स्तरीय पाठसमीक्षा और 2. उच्च स्तरीय पाठसमीक्षा। पाण्डुलिपिओं में संचरित हुए पाठ में जब अशुद्धियाँ, खण्डितांश, विविध पाठभेद एवं प्रक्षेपादि दिखाई देते है तब प्रथमतः निम्न स्तरीय पाठ-समीक्षा की जाती है। जिसमें अभीष्ट कृति का पाठ निश्चित पद्धति से परिशुद्ध स्वरूप में तैयार किया जाता है[1]। तथा विभिन्न पाण्डुलिपियों में संचरित हुए, लेकिन अमान्य किये गये पाठान्तर एवं प्रक्षेपादि को पादटिप्पणी में प्रदर्शित भी किये जाते हैं। इस तरह, जो पाठ संपादित किया जाता है उसको "समीक्षित पाठ-सम्पादन" कहते है[2]। इस तरह की समीक्षितावृत्ति में अधिकृत पाठ के रूप में स्थापित किया गया पाठ मूल कवि ने ही लिखा होगा या नहीं ? उसकी भी प्रमाण-पुरस्सर परीक्षा करने के लिये (स्वतन्त्र रूप से) "उच्च स्तरीय पाठसमीक्षा" की भी आवश्यकता रहती है। पाठसम्पादक को अब इस द्वितीय स्तर की पाठसमीक्षा में पाण्डुलिपियों के साक्ष्य से बाहर निकल के सोचना है। पाण्डुलिपियों में संचरित हुए विविध पाठभेदों में से प्राचीनतम या बहुसंख्य पाण्डुलिपियों में ग्राह्य रहे पाठ का (अधिकृत पाठ के रूप में) चयन कर लेने के बाद भी, अमुक पाठ मूल ग्रन्थकार या कवि के द्वारा ही लिखा गया है ऐसा सुसम्बद्ध अनुमान प्रस्तुत करने के लिये कुछ अन्य समर्थक हेतु एवं सामग्री की भी आवश्यकता रहती है।

---

[1] आधुनिक युग में जो पद्धति निश्चित की गई है उसमें अनेक पाण्डुलिपियों के पाठों का संतुलन-पत्रिकाओं पर पुनर्लेखन करके, तौलनिक अभ्यास से उपलब्ध की गई पाण्डुलिपियों का आनुवंशिक सम्बन्ध सोचके विभिन्न वाचनाओं का निर्धारण किया जाता है। तथा इन में से जो श्रद्धेय वाचना होती है, उसी के पाठ को अधिकृत पाठ के रूप में स्थापित किया जाता है। .

[2] निम्न स्तरीय पाठ-समीक्षा में त्रिविध कार्य होते हैः- 1. अनुसन्धान (Hueristics), 2. वाचना-निर्धारण (Recensio), 3. पाठ-सुधार (Emendation) एवम् पादटिप्पणी में पाठभेदों का निर्देश करना। इन त्रिविध कार्यों से समीक्षितावृत्ति बनाई जाती है।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अतः इस द्वितीय स्तर की पाठ-समीक्षा में – 1. कृतिनिष्ठ आन्तरिक सम्भावना (= पूर्वापर सन्दर्भों में कही गई बातों में सुसंगति है या नहीं उसकी परीक्षा की जाती है। अर्थात् कृति के दो वाक्यों में परस्पर कोई विरोध नहीं होना चाहिये।), 2. कृति में आदि से लेकर अन्त तक कवि की निरूपण शैली, 3. बहिरंग प्रमाण के रूप में कवि ने अपने पुरोगामी ग्रन्थों से कौन सी सामग्री ली है एवं अनुगामी कविओं पर क्या प्रभाव डाला है – उसका विश्लेषण एवं परीक्षण भी किया जाता है। इस तरह की उच्च स्तरीय पाठ-समीक्षा में, उपर्युक्त तीनों प्रमाणों से सोचना आवश्यक है। पाठसम्पादक आरम्भ में तो जब पाण्डुलिपियाँ के साक्ष्य को लेकर सोचता है, तब (अर्थात् निम्न स्तरीय पाठसमीक्षा में) तो वह पूर्ण रूप से वस्तुनिष्ठ अनुमान क्या निकाला जा सकता है – उस पर ही ध्यान रखते हुए आगे बढता है। लेकिन उच्च स्तरीय पाठसमीक्षा के दौरान उसे कृतिसमीक्षा से पाठसमीक्षा करनी चाहिये, जो अधिक फलदायिनी सिद्ध होगी। क्योंकि यहाँ पर आत्मलक्षिता से बचते हुए, कृतिनिष्ठ ठोस प्रमाणों से यदि पाठ की मौलिकता सिद्ध की जाती है, तो उसमें सर्वसम्मति प्राप्त होने की योग्यता भी रहती है। प्रस्तुत आलेख में, इसी दृष्टिकोण से अभिज्ञान-शकुन्तल नाटक के तृतीयाङ्क की पाठसमीक्षा करने का लक्ष्य रखा है।। (शाकुन्तल के तीन पाठ्यांश 1. तीसरे अङ्क का शृङ्गारिक अंश, 2. पञ्चमाङ्क का आरम्भ, तथा 3. सप्तमाङ्क का प्रवेशक – मुख्य रूप से विवादास्पद रहे है।।)

[1]

महाकवि कालिदास का अभिज्ञानश(शा)कुन्तल नाटक संस्कृत नाट्यसाहित्य में सर्वश्रेष्ठ है, तथा विश्वनाट्यसाहित्य में भी वही नाटक अग्रगण्य है। सारे संसार के विद्वानों ने बहुविध पाण्डुलिपिओं का उपयोग करके इस नाट्यकृति की अनेक समीक्षित आवृत्तियाँ प्रकाशित की है। लेकिन इनमें से एक भी समीक्षित आवृत्ति का पाठ अद्यावधि सर्वस्वीकृत नहीं हो सका है। शाकुन्तल के विविध संस्करणों का

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्राथमिक परिचय किया जाय तो सर विलीयम्स जॉन्स ने बंगाली पाण्डुलिपिओं में संचरित हुए अभिज्ञानशकुन्तल का प्रथम अँग्रेजी अनुवाद 1791 ई. स. में प्रकाशित किया था। इसी अनुवाद से पूरे पश्चिमी जगत को हमारे महाकवि कालिदास का परिचय हुआ था। इस के बाद इस नाटक की अनेक पाण्डुलिपियाँ एकत्र करके उसमें संचरित हुई विभिन्न पाठ-परम्पराओं का अभ्यास शूरु हुआ। प्रॉफे. मोनीयर विलीयम्स ने अभिज्ञानशाकुन्तल की देवनागरी वाचना का पाठ प्रकाशित किया (प्रथमावृत्तिः- 1853 में)। (लेकिन उनके सामने राघवभट्ट की अर्थद्योतनिका टीका नहीं थी)। रिचार्ड पिशेल ने ई. सन. 1876 में बंगाली पाण्डुलिपिओं के आधार पर बंगाली वाचना (Pichel, 1876(First Ed) ,1922(Second Ed.)) का समीक्षित पाठ प्रथम बार प्रकाशित किया। उसी तरह से श्री रमानाथ झा (1957) ने शङ्कर एवं नरहरि की टीकाओं के साथ मैथिली-वाचना के पाठ का प्रथम बार प्रकाशन किया। यद्यपि अधिकांश विद्वान् ऐसे है जो मैथिली वाचना का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं स्वीकारते है। क्योंकि इस वाचना का साम्य बहुशः बंगाली वाचना के साथ सद्यः प्रतीत होता है। प्रॉफे. ब्युह्लर ने 1873 में कश्मीरी (शारदालिपि में लिखी) पाण्डुलिपि ढूँढ निकाली थी, और प्रॉफे. एस. के. बेलवलकर ने उसका महत्त्व मूल आदर्शप्रति (Archetype) के समान मान के, उसी के आधार पर कश्मीरी-वाचना (बेलवलकर, 1965) का पाठ निर्धारित किया है। उसके बाद, 1904 ई. स. में T. Foulkes [3] ने ग्रन्थ, तेलुगु इत्यादि दाक्षिणात्य पाण्डुलिपिओं में उपलब्ध होनेवाले अभिज्ञानशाकुन्तल के विविध पाठान्तरों का संग्रह प्रकाशित किया। तब से विद्वज्जगत् को शाकुन्तल की दाक्षिणात्य वाचना भी है इसकी जानकारी मिली। आन्ध्र प्रदेश संस्कृत अकादेमी, हैदराबाद के द्वारा काटयवेम की कुमारगिरिराजीया टीका के साथ अभिज्ञानशाकुन्तल का

[3] A complete collection of the various readings of the Madras manuscripts., Vol. 2 & 3, Madras, 1904

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रकाशन 1982 ई.स.में हुआ है, उसमें दाक्षिणात्य वाचना का पाठ देखा जा सकता है।।

इस तरह से करीब दो सो वर्षों की कालावधि में, पाण्डुलिपियों में संचरित हुए पाठवैविध्य की निम्न स्तरीय पाठ-समीक्षा करने से विद्वानों को ज्ञात हुआ है कि अभिज्ञानशा(श)कुन्तल नाटक का पाठ पँचविध वाचनाओं में प्रवहमान हुआ है। इन में से बंगाली, मैथिली एवं कश्मीरी वाचना में नाटक का बृहत्पाठ संचरित हुआ है। तथा देवनागरी एवं दाक्षिणात्य वाचना में नाटक का लघुपाठ दिखाई देता है। यहाँ प्रश्न होगा कि इन पाँचों वाचनाओं में से कौन सी वाचना में कालिदास ने ही लिखा हुआ पाठ सुरक्षित रहा होगा। अथवा इन पाँचों वाचनाओं में जहाँ जहाँ जो भी मौलिक अंश सुरक्षित रहा हो उसको कैसे पहेचाना जाय। इस दिशा में सब से पहला संनिष्ठ प्रयास गुजरात के प्रॉफे. बलवन्तराय ठाकोर (B.K.Thakore, 1922) ने किया था। उन्होंने प्रथम अखिल भारतीय प्राच्यविद्या परिषद् (1919,पूना) में कहा था कि इस नाटक की तीन वाचनायें तो क्या, केवल दो वाचनायें भी होना वह किसी भी शिष्ट / शिक्षित मानवप्रजा को सम्भवतः मान्य नहीं होगा[4]। किन्तु अभी तक जो काम हुआ है उसमें, जैसा कि उपर कहा गया है - अलग अलग प्रान्तों की पञ्चविध वाचनायें ही प्रकाश में आयी है। उनमें से कोई एक पाठ जो निश्चित रूप से केवल कालिदास ने ही लिखा हो ऐसा पाठ अभी तक सामने नहीं आया है। अतः शाकुन्तल का एक विश्वसनीय पाठ, जो सर्वमान्य हो सके ऐसा पाठ तैयार करने के लिये उच्चतर पाठ-समीक्षा करने की आवश्यकता है।।

प्रॉफे. एस. के. बेलवलकरजी ने इस दिशा में जो प्रयास किये है वह ध्यानास्पद है। यद्यपि मार्गदर्शक हो सके ऐसे उनके शोध-आलेख होते हुए भी परिस्थिति में वस्तुतः कोई सुधार नहीं हुआ है[5]। क्योंकि

---

[4] Cultured humanity cannot possibly tolerate three divergent S'akuntalas or even two. – B. K. Thakore, p.5

[5] (1) निसर्ग कन्या शकुन्तला, कालिदास ग्रन्थावली, अनु. सीताराम चतुर्वेदी, अलीगढ, 1962 के परिशिष्ट में प्रकाशित लेख, (2) S'rigaric Elaboration in

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

आज भी शाकुन्तल का पँचविध पाठ ही प्रचार में है, और इन में से कौन सी वाचना का पाठ विश्वसनीय माना जाय इस विषय में एकमति का सर्वथा अभाव है। जैसे कि – 1. प्रॉफे. एस. के. बेलवलकरजी ने नातिलघु और नातिबृहत् हो ऐसे कश्मीरी वाचना के पाठ को मौलिक माना है। 2. प्रॉफे. दिलीपकुमार काञ्जीलाल ने बंगाली वाचना में संचरित हुए पाठ को प्राचीनतम सिद्ध किया है, लेकिन साथ साथ उसे ही मौलिक भी मान लिया है। 3. काशी के पण्डितमूर्धन्य श्री रेवाप्रसाद द्विवेदीजी ने देवनागरी वाचना के पाठ को ही कालिदास-प्रणीत माना है।।

प्रस्तुत आलेख में, शाकुन्तल नाटक के तृतीयाङ्क के दो तरह के पाठों का परिचय प्राप्त करके उसकी उच्च स्तरीय पाठ-समीक्षा करने का उपक्रम किया जा रहा है। यहाँ कृति-निष्ठ आन्तरिक सम्भावनाओं की चर्चा सोदाहरण की जायेगी। जिसको देख कर सुज्ञ पाठक को प्रतीति होगी कि तृतीयाङ्क का उपर्युक्त शृङ्गारिक अँश, जो बंगाली (एवं मैथिली) वाचना में उपलब्ध होता है वह मौलिक हो सकता है।।

[2]

अभिज्ञानशकुन्तल के तृतीयाङ्क में गान्धर्व-विवाह का वर्णन किया गया है। इस अङ्क की दृश्यावली दो स्वरूप की है। देवनागरी वाचना में संचरित हुए तृतीयाङ्क के पाठ में कुल मिला के 24 श्लोक है। किन्तु बंगाली वाचना के तृतीयाङ्क में 41 श्लोक है। केवल श्लोकसंख्या को देखने से मालुम होता है कि देवनागरी वाचना की अपेक्षा से बंगाली-वाचना के श्लोक करीब दुगुना है। अतः तृतीयाङ्क के लघुपाठ एवं बृहत्पाठ की दृश्यावली में क्या अन्तर है वह द्रष्टव्य है:---

---

S'akuntal – Act:3, Indian studies in Honor of C.R.Lanman, Harvard Uni. Press, 1929, pp.187-192, (3) The Original S'akuntala, Sir AShutosh Mookerjee Silver Jubilee Vol.3 Orientalia, part-2, Calcutta, 1925, pp.344-359 (4) The Application of a few Canons of Textual & Higher Criticism to Kalidasa's S'akuntala, Published in the Asia Major, Leipzig -2-1,1923, pp. 79-104

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

यहाँ विशेष रूप से जिस अंश में संक्षेप या प्रक्षेप की स्थिति प्रवर्तमान है वह भाग निम्नोक्त है:--

देवनागरी वाचना में दोनों सखियाँ मृगपोतक को अपनी माता के साथ संयोजित करने का बहाना बनाती है। और शकुन्तला अपने को अशरणा मेहसूस करने लगती है तब दोनों सखियों ने कहा कि – पृथिव्या यः शरणं स तव समीपे वर्तते।। इस के बाद दोनों सखियाँ लतावलय से बिदा लेती है – अब नायक और नायिका के एकान्त-(रहसि)मिलन का वर्णन किया जाता है। यहाँ पर 18-19-20-21 इन चार श्लोकों के अन्तराल के बाद तुरन्त ही नेपथ्योक्ति आती है कि – चक्रवाकवधूके, आमन्त्रयस्व प्रियसहचरम्। उपस्थिता रजनी।। और दोनों सखियाँ गौतमी का प्रवेश करवाती है। इसके प्रतिपक्ष में बंगाली वाचना का जो पाठ है उसमें सखियाँ की बिदा और नेपथ्योक्ति के बीच में 25-26-27-28-29-30-31-32-33-34-35-36-37, अर्थात् कुल मिला के 13 श्लोकों का समूह उपस्थित होता है। बंगाली वाचना के इतने लम्बे पाठ्यांश में कौन सी दृश्यावली रखी गई है – यह किसी भी पाठालोचक के लिये जानना अतीव आवश्यक है[6]।

1. दु:षन्त शकुन्तला को लतावलय से बाहर जाने से रोकता है। क्योंकि मध्याह्न का आतप अभी प्रखर है। फिर भी शकुन्तला बाहर जाती है और दु:षन्त वहाँ जमीन पर गिरे शकुन्तला के मृणालवलय को अपने वक्षःस्थल से लगाता है। शकुन्तला इस वलय को लेने के बहाने फिर से लतावलय में प्रविष्ट होती है और दु:षन्त उसके हाथ में मृणालवलय पहनाता है।
2. शकुन्तला जब लतावलय में पुनः प्रविष्ट होती है तब दु:षन्त नायिका को 'जीवितेश्वरी' शब्द से पुकारता है, और दु:षन्त जब मृणालवलय पहनाता है तब शकुन्तला भी दु:षन्त को 'आर्यपुत्र' ऐसा सम्बोधन करती है।

---

[6] जिज्ञासुओं की सुविधा के लिये परिशिष्ट – 1 में इस अंश का सम्पूर्ण पाठ रखा गया है। जिससे दोनों वाचनाओं के पाठ में क्या अन्तर है वह स्पष्ट होगा।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

3. दुःषन्त ने मृणालवलय को जब दुबारा पहनाया, तब शकुन्तला उसे ठीक तरह से देख नहीं पाती है। क्योंकि उसके नेत्र में कर्णोत्पल की रेणु गिरने के कारण उसकी दृष्टि कलुषित हो गई थी। दुःषन्त उसे अपने वदन-मारुत से स्वच्छ कर देता है। शकुन्तला प्रिय करनेवाले व्यक्ति पर स्वयं अनुपकारिणी बनी रहने के लिये लज्जा का अनुभव करती है। दुःषन्त शकुन्तला को चुम्बन करना चाहता है, परन्तु उसी क्षण नेपथ्य से आवाज आती है। तदुपरान्त अकेली गौतमी का प्रवेश होता है। (बंगाली पाठ में, गौतमी को लतावलय का मार्ग दिखाती प्रियंवदा और अनसूया साथ में नहीं आती है)।।

यहाँ पर प्रश्न ऊठता है कि बंगाली वाचना का बृहत्पाठ यदि मौलिक है तो, क्या देवनागरी वाचना का लघुपाठ (रङ्गभूमि की आवश्यकता को ध्यान में लेकर किसी के द्वारा) संक्षिप्त किया गया पाठ है ? अथवा –गान्धर्व-विवाह का संयम के साथ वर्णन करनेवाला देवनागरी एवं दाक्षिणात्य वाचना का पाठ, जो अधिक व्यंजनापूर्ण लगता है वह मौलिक पाठ है और कालान्तर में बंगाली परम्परा के विद्वानों ने उपर्युक्त नवीन दृश्यावली का प्रक्षेप करके, लघुपाठ में से बृहत्पाठ बनाया है ?।। इस समस्या का उत्तर ढूँढने के लिये केवल प्राचीनतम पाण्डुलिपि का साक्ष्य या बहुसंख्य पाण्डुलिपियों का साक्ष्य देखना पर्याप्त नहीं है और निर्णायक भी नहीं है। यहाँ किसी भी टीकाकार का मत भी विश्वसनीय नहीं है, क्योंकि उपलब्ध टीकाकारों में से एक भी टीकाकार 15वीँ शताब्दी से अधिक पुराना नहीं है। ऐसी स्थिति में, हमारे लिये निम्न स्तरीय पाठ-समीक्षा के उपरान्त उच्च स्तरीय पाठ-समीक्षा के रूप में " कृति-समीक्षा से पाठ-समीक्षा " करनी अनिवार्य बन जाती है।।

[3]

आन्तरिक सम्भावना या कृतिनिष्ठ ठोस प्रमाण – शब्द से जो अभिप्रेत है उसको समझने के लिये एक-दो उदाहरण देखने होंगेः—(1) शाकुन्तल की प्रस्तावना करते हुए सूत्रधार ने कहाः- अद्य खलु

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

कालिदास-ग्रथित-वस्तुनाऽभिज्ञानशाकुन्तलनामधेयेन नवेन नाटकेनोपस्थातव्यमस्माभिः। उसके बाद सूत्रधार के कहने पर नटी ने ग्रीष्म ऋतु का गीत गाया। जिसको सून कर सूत्रधार ने कहा – आर्ये, साधु गीतम्। अहो रागबद्धचित्तवृत्ति- रालिखित इव सर्वतो रङ्गः। तदिदानीं कतमत् प्रकरणम् आश्रित्यैनम् आराधयामः। - यहाँ पर, 'प्रकरण' शब्द देवनागरी वाचना का है, उसके स्थान में बंगाली एवं मैथिली वाचना में 'प्रयोगम्' ऐसा पाठान्तर भी मिलता है। इसके उपरान्त 'चर्चा' नामक टीका में 'प्रयोगकरणेन' ऐसा तीसरा पाठभेद भी दिखाई पडता है। (जिसमें प्रकरण और प्रयोग इन दोनों शब्दों को संमिश्रित किया गया है)। संस्कृत के सभी छात्र यह जानते है कि दशविध रूपकों में से प्रकरण प्रकार का रूपक तो दश अङ्कों का होता है। इसी लिये शास्त्राज्ञा के दुराग्रही किसी (बंगाली या मैथिली) व्यक्ति ने 'प्रकरण' के स्थान पर 'प्रयोग' शब्द को रख कर दूसरे पाठभेद को जन्म दिया। और तीसरे किसी ने इन दोनों शब्दों को एकत्र करके 'प्रयोगकरण' जैसा इदं तृतीयम् कर दिया। राघव भट्ट जैसे आरूढ टीकाकार भी प्रकरण शब्द के विनिवेश का ध्वनि नहीं समझ पाये। यद्यपि उन्होंने परम्परागत पाठ की रक्षा तो की, किन्तु सम्भवतः बिना सूक्ष्म विचार किये " प्रकरणम् रूपकम्। " लिख दिया। मतलब कि राघव भट्ट को भी यहाँ प्रकरण शब्द के विनिवेश का प्रयोजन ध्यान में नहीं आया, और (यहाँ प्रकरण शब्द रूपक-सामान्य का वाचक है – ऐसे) एक गलत व्याख्यान का जन्म हुआ। दूसरी ओर प्रतिलिपि-कर्ताओं ने नये नये पाठान्तरों को भी उद्भावित कर लिये।

वस्तुतः यहाँ इस नाटक में आगे चल कर, पञ्चम अङ्क में दुःषन्त की विस्मृति का प्रसंग आकारित होनेवाला है। दुर्वासा के शाप से दुःषन्त शकुन्तला को भूल जानेवाला है। इस केन्द्रवर्ती घटना की अभिव्यंजना करने के लिये ही महाकवि नें नाटक की प्रस्तावना में, क्षणचुम्बितानि.....वाले ऋतुगीत को सून कर मुग्ध हुए सूत्रधार के मुख से नाटक शब्द के स्थान पर प्रकरण शब्द का उच्चारण करवाया है।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अन्यथा सूत्रधार ने आरम्भ में ही कहा था कि ' नवेन नाटकेन उपस्थातव्यम् ....'। लेकिन रागबद्धचित्तवृत्ति का यही परिणाम हो सकता है। अतः नटी सूत्रधार को याद दिलाती है कि – नन्वार्यमिश्रैः प्रथममेवाज्ञप्तम् अभिज्ञानशाकुन्तलं नामापूर्वं नाटकं प्रयोगेऽधिक्रियतामिति। जिसके प्रत्युत्तर में सूत्रधार ने कहा है कि – आर्ये, सम्यगनुबोधितोऽस्मि। अस्मिन् क्षणे विस्मृतं खलु मया।। नाटक में आगे चल कर प्रस्तुत होनेवाले विस्मरण और पुनःस्मरण का यह साङ्केतिक लघुरूप प्रस्तावना में ही रखा गया है। अतः प्रकरण शब्द से जो भावि विस्मरण का प्रसंग ध्वनित होता है – उसे आन्तरिक सम्भावना कहते है। यहाँ बहुसंख्य पाण्डुलिपियों के साक्ष्य से या प्राचीनतम पाण्डुलिपि के साक्ष्य से यदि प्रयोगम् जैसे [7] पाठभेद का समर्थन होता है, तो भी उसको हटा कर प्रकरणम् जैसे आन्तरिक सम्भावना वाले (देवनागरी वाचना के) पाठ को ही मौलिक पाठ के रूप में स्थापित करना चाहिये।।

(2) इसी तरह से, (देवनागरी वाचना के) द्वितीयाङ्क के अन्त भाग में करभक राजमाताओं का सन्देश लेकर आया है:- - वह कहता है कि – देव्याज्ञापयति – आगामिनि चतुर्थदिवसे <u>प्रवृत्तपारणो</u> मे उपवासो भविष्यति। तत्र दीर्घायुषावश्यं संभावनीया इति। दाक्षिणात्य वाचना के पाठ पर काटयवेम भूप की टीका है उसमें <u>निवृत्तपारणो</u> मे उपवासो.... जैसा पाठान्तर है। किन्तु बंगाली, मैथिली और कश्मीरी वाचना के पाठानुसार क्रमशः पुत्रपिण्डपारणो, पुत्रपिण्डपालन और पुत्रपिण्डपर्युपासनो – जैसे तीन पाठान्तर भी प्राप्त होते है। यहाँ पर भी बहुसंख्य पाण्डुलिपिओं में कौन सा पाठ ग्राह्य रहा है, या प्राचीनतम पाण्डुलिपि किस पाठभेद को मान्यता देती है – उसको महत्त्व न देते हुए, नाटक के आरम्भ में ही नायक दुःषन्त को " सर्वथा चक्रवर्तिनं

---

[7] आ परितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम् । (1-2) यहाँ सूत्रधार ने केवल प्रयोग शब्द का उपयोग नहीं किया है । यहाँ तो प्रयोगविज्ञानम् शब्द रखा गया है ।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

पुत्रम् अवाप्नुहि " ऐसा जो आशीर्वचन मिला है उसको ध्यान में लेकर सोचना चाहिये कि पुत्रप्राप्ति को यहाँ नाटक का लक्ष्य बताया गया है। तथा आदि से लेकर अन्त तक प्रकट या अप्रकट रूप में पुत्रप्राप्ति का उल्लेख सभी अङ्कों में होता ही रहा है। अतः यदि (सर्वत्र) देवनागरी या दाक्षिणात्य वाचना के पाठभेदों को मौलिक पाठ के रूप में मान्यता देंगे तो प्रवृत्तपारणो या निवृत्तपारणो – जैसे पाठभेद से वहाँ द्वितीयाङ्क में पुत्रप्राप्ति का लक्ष्य अनुल्लिखित रह जायेगा। कहने का तात्पर्य यही है कि प्रकृत स्थल में पुत्रप्राप्ति के सन्दर्भ को यदि आन्तरिक सम्भावना के रूप में स्वीकारते है तो बंगाली, मैथिली या कश्मीरी वाचना के पाठान्तर को ही मौलिक पाठ के रूप में मान्यता मिल सकती है।।

(3) देवनागरी वाचनावाले शाकुन्तल के अन्दर के वाक्यों को, आन्तरिक सम्भावना के मानदण्ड से यदि देखेंगे तो मालुम होगा है कि यहाँ बंगाली वाचना के मौलिक पाठों को परिवर्तित करके, कालान्तर में कुत्रचित् नवीन पाठान्तर दाखिल किये गये है। उदाहरण के रूप में – चतुर्थाङ्क में अन्तिम श्लोक में कण्व मुनि ने कहा है कि -अर्थो हि कन्या परकीय एव तामद्य संप्रेष्य परिगृहीतुः। जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा।। 4-21 (राघवभट्ट, पृ. 149) किन्तु बंगाली वाचना के पाठानुसार यहाँ पर – जातोऽस्मि सद्यो विशदान्तरात्मा चिरस्य निक्षेप इवार्पयित्वा।। (पिशेल, पृ. 67) ऐसा पाठभेद है। यहाँ प्रश्न होगा कि महाकवि कालिदास ने कन्या के लिये न्यास शब्द लिखा होगा, या निक्षेप शब्द को रखा होगा ? तो जो देवनागरी वाचना में न्यास शब्द का प्रयोग हुआ है, उसी में एक दूसरे स्थान पर शकुन्तला के मुख से निक्षेप शब्द का प्रयोग हुआ है ऐसा भी प्रमाण मिलता है। तद्यथा – श्लोक 4-12 के नीचे, शकुन्तला अपनी प्रिय वनज्योत्स्ना को दोनों सखियों के हाथ में रखते हुए कहती है:— (सख्यौ प्रति) हला, एषा द्वयोर्युवयोर्ननु हस्ते निक्षेपः। यहाँ न्यास अर्थ में ही निक्षेप शब्द का प्रयोग किया गया है। कोई भी कवि एक निश्चित अर्थ व्यक्त करने के लिये पारिभाषिक शब्द का प्रयोग तो सारी कृति में

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

एक समान ही करेगा। ऐसी स्थिति में, अन्तःसाक्ष्य से ही प्रमाणित होता है कि 4-21 में मूल में तो निक्षेप शब्द ही होगा[8]। जिसको बदल के देवनागरी वाचना में न्यास शब्द को रखा गया होगा।।

(4) महाकवि कालिदास ने अपने काव्यों में ' अथवा ' अव्यय का प्रयोग प्रश्नोत्तर[9] एवं पक्षान्तर[10] के अर्थ में किया है। शाकुन्तल में दुःषन्त पहले प्रस्तुत किये पक्ष को एकदम अग्राह्य जाहिर करके, तुरन्त अभीष्ट एवं सही पक्षान्तर की प्रस्तुति करने के लिये अथवा शब्द का जो विनियोग करता है वह ध्यानास्पद है। उदाहरण रूप में, षष्ठाङ्क में अङ्गुलीयक को उपालम्भ देता हुआ कहता है कि – कथं नु तं बन्धुरकोमलाङ्गुलिं करं विहायासि निमग्नमम्भसि।। **अथवा** – अचेतनं नाम गुणं न लक्षयेन्मयैव कस्मादवधीरिता प्रिया।।(6-13) ऐसे एक निश्चित अर्थवाले अथवा शब्द का बार बार प्रयोग करना वह कालिदास की शैली की एक विशिष्टता है। इस प्रकार की शैली को आन्तरिक सम्भावना रूप एक प्रमाण मानके हम देवनागरी वाचना के संक्षिप्त किये गये या बंगाली वाचना में प्रक्षिप्त लगते हुए श्लोकों की पाठालोचना कर सकते है। उदाहरण रूप से –

राजा – सम्यगियमाह – इदमुपहितसूक्ष्मग्रन्थिना स्कन्धदेशे, स्तनयुगपरिणाहाच्छादिना वल्कलेन।

---

[8] प्राचीन धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में भी धरोहर, अमानत, न्यास अर्थ में निक्षेप शब्द का प्रयोग मिलता है। द्रष्टव्यः मनुस्मृतिः – 8 / 4

[9] राजा – अपिनाम कुलपतेरियमसवर्णक्षेत्रसंभवा स्यात् । **अथवा** कृतं सन्देहेन, - असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः । सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः ।।1-19 (राघवभट्ट, पृ.33)

[10] क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः । तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ।।..... **अथवा** कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन् पूर्वसूरिभिः । मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः ।। रघुवंशम् 1 -2, 4 (कालिदास ग्रन्थावली, सं. श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी,वाराणसी, 1986)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

वपुरभिनवमस्याः पुष्यति स्वां न शोभां, कुसुममिव पिनद्धं पाण्डुपत्रोदरेण।।

अथवा – काममप्रतिरूपमस्य वयसो वल्कलम्। न पुनरलंकारश्रियं न पुष्यति। कुतः –

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं, मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।

इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी, किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्।। (1-17)

दुःषन्त को यहाँ पर शकुन्तला ने जो वल्कल पहने थे उससे उसके अभिनव शरीर की शोभा नहीं बढती है ऐसा पहले लगता है। किन्तु उसका मतलब तो यह भी होगा कि शकुन्तला तब ही सुन्दर लगेगी कि वो जब अच्छे वस्त्र पहेनेगी। किन्तु शकुन्तला की सुन्दरता अच्छे वस्त्रों पर निर्भर नहीं है। अतः दुःषन्त ने तुरन्त इस प्रथम पक्ष को अमान्य करके, 'अथवा' शब्द का प्रयोग करते हुए दूसरा पक्ष प्रस्तुत किया। शकुन्तला स्वयं मधुराकृतिवाली है, इसी लिये उसके लिये वल्कल भी मण्डन बन गये है , और उससे भी वह सुन्दर ही लगती है। शाकुन्तल नाटक में 'अथवा' शब्द से इस तरह की प्रस्तुति बार बार की गई है, जिसको देखते हुए यह मानना होगा कि देवनागरी वाचना में जो एक ही (सरसिजमनुविद्धं....) श्लोकवाले पाठ का संचरण हुआ है, वह संक्षिप्त किया गया पाठ है।।

आन्तरिक सम्भावना शब्द से किस तरह के प्रमाण अभिप्रेत है उसको स्पष्ट करने के लिये ये उदाहरण दिये गये हैं। और इन उदाहरणों से यह भी स्पष्ट होता है कि यह आवश्यक नहीं है कि आन्तरिक सम्भावनावाला पाठ केवल देवनागरी में ही हो, या केवल बंगाली में ही हो। किन्तु प्रस्तुत सन्दर्भ में हम जिस पाठ्यांश की आलोचना करना चाहते है वह बंगाली वाचना का तृतीयाङ्क का विस्तृत शृङ्गारिक भाग है। सामान्य रूप से तो पाठ-समीक्षा का एक अधिनियम ऐसा है कि लघुपाठ की अपेक्षा से जो बृहत् एवं अलंकृत

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

पाठ होता है वह परवर्ती काल का होता है[11]। यद्यपि यह अधिनियम रामायण, महाभारत जैसे प्रोक्त-प्रकार[12] के ग्रन्थों के लिये एकदम सही है। क्योंकि ये ग्रन्थ अनेककर्तृक प्रकार के होते है। किन्तु नाटक जैसी एककर्तृक एवं अभिनेय कृति के लिये यह अधिनियम सर्वथा युक्तियुक्त सिद्ध नहीं होगा। क्योंकि नाट्यप्रयोग के दौरान रंगभूमि की, या समय की अपेक्षा के अनुसार नाट्यकृति के पाठ्यांश में प्रक्षेप या / एवं संक्षेप बार बार किये जा सकते है। अतः शाकुन्तल के मौलिक पाठ को ढूँढने के लिये, उपलब्ध द्विविध (बृहत्पाठ एवं लघुपाठ) पाठ-परम्पराओं की आन्तरिक सम्भावना के मानदण्ड से परीक्षा करने का यहाँ उपक्रम किया गया है।।

[4]

तृतीयाङ्क का उपर्युक्त विस्तृत वर्ण्य विषय, जो केवल बंगाली और मैथिली वाचना के अभिज्ञानशकुन्तल में ही उपलब्ध होता है उसकी मौलिकता के बारे में भूतकाल के अनेक पुरोगामी विद्वानों ने भी चर्चा की है। अतः उन गणमान्य विद्वानों के मत-मतान्तर को सब से पहले जानना आवश्यक है। तत्पश्चात् ही " कृति-समीक्षा से पाठ-समीक्षा " करने का आरम्भ किया जायेगा।। जैसे कि – (1) कोलकाता के प्रॉफे. शरदरंजन राय (Ray, 1908, (1924, 1962)) ने कहा है कि – This is slovenly in style. In substance it is silly and does not care much for decorum. The passage describes at great length how the मृणालवलय was picked

---

[11] Texus simplicior is earlier than the textus ornatior.

[12] भारतीय वाङ्मय 1. दृष्ट, (वेदमन्त्र) 2. श्रुत, (बुद्ध एवं महावीर की वाणी) 3. उत्कीर्ण, 4. प्रोक्त, (अनेक-कर्तृक) एवं 5. कृत प्रकार (एककर्तृक) का है । इन में से उत्कीर्ण पाठ को छोड के अन्य ग्रन्थों के पाठों की पाण्डुलिपियाँ मिलती है । जिसमें पाठभेद से समस्याभेद है, और इस समस्याभेद से पाठसम्पादन के सिद्धान्तों में भी भेद होना / करना अपेक्षित है ।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

up by Dushyanta and put back on the wrist of Shakuntala. This however contradicts the poet; for, later on we find the मृणालवलय still lying in the grove. Compare हस्ताद् भ्रष्टमिदं बिसाभरणमित्यासज्यमानेक्षणो निर्गन्तुं सहसा न वेतसगृहाद् ईशोऽस्मि शून्यादपि – Infra – which is undoubtedly authentic being common to all the recensions.[13]

यद्यपि उन्हों ने बंगाली वाचना के बृहत्पाठ्यांश को प्रक्षिप्त माना है, किन्तु यह प्रक्षेपवाला पाठ 12 शताब्दी में साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ को मालूम था – ऐसा भी श्रीशरदरंजन राय ने ही बहुत पहेले (1908) कहा था:--- The interpolation, clumsy as it is must have been made at a very early dates. The Sahitya-darpana quotes the sloka चारुणा स्फुरितेनायम् etc. from the above in some 14th century; the line हृदयस्य निगडमिव मे, as it occurs here, was by Vardhamana ascribed to Kalidasa. (pp. 344).

(2) प्रॉफे. एस. के. बेलवलकरजी (K., 1929) ने उपर्युक्त वलय प्रसंग के सन्दर्भ में श्रीशरदरंजन राय के मत का खण्डन करते हुए कहा है कि – शकुन्तला ने केवल एक एक वलय ही दोनों हाथ में पहेने थे ऐसा निश्चयात्मक रूप से कहेने का हमे कोई अधिकार नहीं है। क्योंकि यहाँ मृणालैकवलयम् शब्द का अर्थ तो " एकमात्र मृणालतन्तु से ही बने हो ऐसे अनेक वलय भी उसने पहेने होंगे " ऐसा हो सकता है। यदि राघवभट्ट (राघवभट्ट, 2006) जो कहते है कि – शिथिलितं शिथिलं

---

[13] Abhijnana-sakuntalam, trans: Sarada Ranjan Ray, Calcutta, 1908, pp. 344

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

संजातं मृणालस्यैकं मुख्यं वलयं यत्र।... एकम् इत्यनेन वलयान्तरासहत्वं ध्वन्यते।।(राघवभट्ट, पृ. 90) उसको मान लिया जाय तो भी यह तो स्वीकारना ही होगा कि शकुन्तला के दूसरे हाथ से वलय गिर सकता है।[14]

हम यह भी कह सकते है कि – श्री शरदरंजन राय के मतानुसार यदि मृणाल-वलय प्रसंग प्रक्षिप्त है तो, तृतीयाङ्क के अन्तिम श्लोक में जो बिसाभरण का निर्देश है उसका क्या समाधान दिया जायेगा- ऐसा प्रश्न खडा होता है। क्योंकि यह श्लोक तो शाकुन्तल नाटक की पाँचो वाचनाओं में एक समान रूप से ग्राह्य रहा है। इस श्लोक में निर्दिष्ट तीन चीजों में से 1. शकुन्तला की पुष्पमयी शय्या, तथा 2.शकुन्तला का मदन-लेख अङ्क में साक्षात् निर्दिष्ट हुआ है, परन्तु मृणाल-वलय प्रसंग यदि प्रक्षिप्त होगा तो इस श्लोक में तीसरी चीज के रूप में बिसाभरण (मृणाल-वलय) का जो उल्लेख हुआ है, वह निराधार हो जायेगा। परन्तु यदि मृणाल-वलय प्रसंग को मौलिक मानते है तो अन्तिम श्लोक में निर्दिष्ट तीनों चीजों की संगति बैठ जाती है।।

[5]

तृतीयाङ्क के बृहत्पाठ्यांश की मौलिकता का समर्थन करने के सन्दर्भ में प्रॉफे. एस. के. बेलवलकरजी का जो मुख्य प्रदान है (S.K.Belvalkar, 1929) वह दो अन्य तर्क के उपर अवलम्बित है:— जैसे कि (1) सखियों की बिदा हो जाने के बाद और गौतमी के आगमन के बीच में जो अपेक्षित काल का अन्तराल होना आवश्यक है वह

---

[14] We have really no right to conclude that S'akuntala wore only one wristlet on each hand; there must have been more than one so worn; only, as the word *mrinalaika* points out, they were all made of lotus alone. But even supposing that we agree to concede his point to Raghavabhatt, there was, one may urge, the other hand in any case, from which the equally loose wristlet could drop away any time – even subsequent to the retying of the wristlet by Dushyanta on one of the hands. ***S'rngaric Elaboration in S'akuntala - Act 3***,S.K.Belvalkar,(1929), p191

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

देवनागरी वाचना के लघुपाठ में नहीं दिखाई देता है[15]। दुःषन्त की उक्ति हैः—सुन्दरि, अपरिनिर्वाणो दिवसः। ..... कथमातपे गमिष्यसि परिबाधापेलवैरङ्गैः।। (3 – 19) और जब गौतमी का आगमन होता है तब वह बोलती है कि वत्से, परिणतो दिवसः। तद् एहि, उटजम् एव गच्छामः।। अर्थात् अङ्क का आरम्भ मध्याह्न में होता है – ऐसी प्रकट सूचना है, किन्तु (देवनागरी पाठ के अनुसार) कुछ ही क्षणों में गौतमी आती है और नेपथ्य से कहा जाता है कि शाम ढल गई.है, ...उपस्थिता रजनी। इस के प्रतिपक्ष में, मध्याह्न एवं सन्ध्या के बीच का अपेक्षित समयावधि व्यतीत होने के लिये बंगाली वाचना का जो बृहत्पाठ है उसमें वर्णित नायक-नायिका का लम्बा सहचार समुचित प्रतीत होता है। अर्थात् समय-सूचना के अनुरूप विस्तारवाला पाठ केवल बंगाली एवं मैथिली वाचनाओं में ही है। नाटक जैसी साहित्यिक कृति में समय-सूचना की संगति होना – वह भी एक आन्तरिक सम्भावना है, और महाकवि कालिदास की नाट्यकृति के मौलिक पाठ को ढूँढने में वह सबल प्रमाण सिद्ध होता है।। प्रॉफे. एस. के. बेलवलकरजी ने कहा है कि तृतीयाङ्क की विस्तृत शृङ्गारिक घटना मध्याह्न से सायंकाल के बीच में व्यतीत होने का प्रमाण डॉ. रिचार्ड पिशेल की आवृत्ति में जो श्लोक 81है, जिस में सायंकाल की लम्बी होनेवाली छाया का उल्लेख है। अर्थात् – दिनावसानच्छायेव पुरोमूलं वनस्पतेः (3 – 29) वह श्लोक भी समर्थक प्रमाण है। तथा (2) पिशेल की आवृत्ति का मणिबन्धनगलितमिदं.....मृणालवलयं स्थितं पुरतः। (3-31) श्लोक वर्धमान (12वीँ शती) ने गणरत्नमहोदधि में उद्धृत किया है, एवमेव अनेन लीलाभरणेन ते प्रिये..... जनः समाश्वासित एष दुःखभाग् अचेतनेनापि सता न तु त्वया।।(3-32) वाला श्लोक हर्षवर्धन ने रत्नावली में उपयुक्त किया है इस लिये बंगाली वाचना का मृणालवलय प्रसंग भी, गद्य-संवादों के साथ, मौलिक मानना होगा। इस तरह प्रॉफे.

[15] The most cogent objection against its shorter version is the fact that it plays fast and loose with the time-indications of the scene.......The longer version, on the other hand, does observe the proportion.(1929),p.190

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

एस. के. बेलवलकरजी (1929) ने बंगाली वाचना के बृहत्पाठ का समर्थन करने के लिये बाह्य प्रमाण के रूप में हर्षवर्धन की दो नाटिकाओं – रत्नावली और प्रियदर्शिका – के कुछ शब्दसमूह एवं दृश्य-सादृश्य की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। और उन्हों ने कहा है कि हर्षवर्धन ने महाकवि कालिदास का अनुकरण करते हुए इन दोनों नाटिकाओं में जो निरूपण किया है उससे यह सिद्ध होता है कि अभिज्ञानशकुन्तल का विस्तृत पाठ सप्तम शताब्दी के पूर्वार्ध से प्रचार में रहा है[16]।।

इस तरह प्रॉफे. एस. के. बेलवलकरजी ने शकुन्तल के बृहत्पाठ की मौलिकता एवं प्राचीनतमता सिद्ध करने के लिये जो उच्चतर समीक्षा प्रस्तुत की है, वह हमारे लिये उपकारक एवं दिशासूचक भी है। तथापि यह भी कहना होगा कि बंगाली बृहत्पाठ का समर्थन करने के बाद भी, कालान्तर में उन्हों ने बृहत्पाठ के मौलिक होने का पक्ष छोड दिया होगा ऐसा प्रतीत होता है। क्योंकि उनके अवसान के बाद, उन्होंने तैयार किये अभिज्ञान-शाकुन्तल का समीक्षित पाठ, जो साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली की ओर से डॉ. वी. राघवन ने प्रसिद्ध (1965 में) किया है, उसमें तो कश्मीरी वाचना का पाठ दिया है। उसमें उन्होंने ब्युह्लर ने ढूँढी हुई शारदालिपि की पाण्डुलिपि को आधार बनाया है। जैसा कि डॉ. वी. राघवन ने बताया है – उनकी दृष्टि में कश्मीरी वाचना का पाठ मौलिक पाठ के रूप में उनको मान्य हो सकता है[17]। (कश्मीरी वाचनावाले शाकुन्तल का जो पाठ मिलता है वह नातिविस्तृत एवं नातिलघु ऐसा पाठ है।) किन्तु डॉ. बेलवलकरजी

---

[16] But if now it can be shown that even so early a witer as Shriharsh in the Ratnavali has imitated the longer S'rigaric version, it will have to be in that case concluded that some part of the " elaboration " probably comes from Kalidasa himself.......The hero in both the plays describes the bed and other objects in the bower from which the heroine has just departed. (S.K. Belvalkar, 1929), p. 188.

[17] I could see that he had taken here the Kashmiri recension....No part of this elaboration is taken by him into the present text. – Introduction, p. 4 of The Abhijnanas'akuntala, Ed. S.K. Belvalkar, Sahity Akademi, New Delhi, 1965

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

ने अन्य कौन कौन सी पाण्डुलिपियों का विनियोग किया था उसका विवरण डॉ. वी. राघवन नहीं दे पाये है।।

यहाँ पर यह भी कहना आवश्यक है कि (1) मृणालवलय – प्रसंग के अनुसन्धान में ही एक दूसरा रोचक शृङ्गारिक दृश्य आता है, जिसमें शकुन्तला के नेत्र में पुष्परज गिरने के कारण उसकी दृष्टि कलुषित होने का प्रसंग निरूपित होता है। दुःषन्त उस पुष्परज को अपने वदन-मारुत से हटा के शकुन्तला के नेत्र को स्वच्छ कर देता है। यह प्रसंग प्रक्षिप्त है या नहीं उसके लिये प्रॉफे. श्री एस. के. बेलवलकरजी ने अपने विचार प्रकट नहीं किये है। एवमेव, दूसरे भी कोई विद्वान् ने इस के बारे में सम्मति या विप्रतिपत्ति नहीं दिखाई है। तथा (2) इस शृङ्गारिक दृश्यावली प्रस्तुत करनेवाले विस्तृत अङ्क के 41 श्लोकों में से कौन कौन से श्लोक प्रक्षिप्त हो सकते है, उसकी भी स्वतन्त्र रूप से चर्चा किसी विद्वान् ने की हो ऐसा ज्ञात नहीं है।।

[6]

रिचार्ड पिशेल के बाद अभिज्ञानशकुन्तल (Kanjilal, 1980) के बृहत्पाठ का पुनःसम्पादन करनेवाले विद्वान् है डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल। उन्होंने इस नाटक की सम्भवतः अधिकाधिक पाण्डुलिपियाँ और सभी टीका-सामग्री देखी है। तथा पूरे विस्तार के साथ यह सिद्ध किया है कि कश्मीर के आठवीँ – नवमी शताब्दी के प्रायः सभी आलङ्कारिकों ने अभिज्ञानशकुन्तल के जिन श्लोकों का उद्धरण दिया है, उसमें बंगाली वाचना में संचरित शब्दों (पाठान्तरों) का ही समादर किया है। यद्यपि 1908 में श्री शरदरञ्जन राय (कोलकाता) ने 14वीँ शती के साहित्यदर्पण में उद्धृत हुए शकुन्तल के एक श्लोक की ओर ध्यान आकृष्ट किया था। लेकिन डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल ने तो कश्मीर के बहुत सारे आलङ्कारिकों का सन्दर्भ देते हुए यह दिखाया है कि अभिज्ञानशकुन्तल का बृहत्पाठ ही प्राचीन काल से प्रसिद्धि में रहा है। वे कहते है कि 10वीँ शती से पूर्व में यदि

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तल का बृहत्पाठ प्रचार में है, तो 20वीँ शती के हम लोगों को यही पाठ अधिक श्रद्धेय है ऐसा स्वीकारना ही चाहिये[18]।

डॉ. एस. के. बेलवलकरजी ने जैसे तृतीयाङ्क की समय-सूचनाओं की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए बृहत्पाठ का समर्थन किया है, उसी तरह से डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल ने एकान्त मिलन के दौरान अपने प्रियतम का पति के रूप में स्वीकार करने से पहले जो विस्तृत समय (सहचार) की अपेक्षा रहती है[19] उसकी ओर ध्यान आकृष्ट किया है। यह भी एक सबल तर्क है, जो बंगाली वाचना के बृहत्पाठ का समर्थन करता है। डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल ने भी बंगाली पाण्डुलिपियों में संचरित हुए अभिज्ञानशकुन्तल के बृहत्पाठ को ही प्राचीनतम और मौलिक मानने का जो मताग्रह पुरस्कृत किया है, वह केवल एक व्यवहारिक तर्क उपर ही आधारित है। उसमें कृतिनिष्ठ कोई वचन का समर्थन नहीं दिया है। एवमेव, इसी बंगाली वाचना की विस्तृत शृङ्गारिक दृश्यावली में आये हुए कौन कौन से श्लोक स्पष्ट रूप से प्रक्षिप्त प्रतीत हो रहे है – उसकी भी प्रकट आलोचना उन्होंने नहीं की है।।

[7]

शाकुन्तल के तृतीयाङ्क के शृङ्गारिक दृश्यों की मौलिकता के सन्दर्भ में पुरोगामी पाठसमीक्षकों की स्थापनाओं को देखने के बाद, प्रस्तुत आलेख में कृति-समीक्षा से जो पाठ-समीक्षा प्रस्तुत करने का उद्देश्य रखा है उसकी चर्चा करने का अब अवसर है:—इस तीसरे अङ्क में आये हुए 1. दुःषन्त ने शकुन्तला को पहनाये हुए मृणालवलय

---

[18] If evidences testify to the existence of the alleged enlarged version before the 10th century, it would be proper for us in the 20th century to accept the same as more authentic than any interpretative reconstruction.p.132

[19] It required some time for S'akuntala to muster courage & to reciprocate the desire of the king.She had accepted the King both as her lover & as consort, but some interval of time must be allowed to overcome the first shock of singular presence with an unknown person, i.e. the King. (Introduction - p.126)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

का प्रसंग, और 2. शकुन्तला की दृष्टि कलुषित होने पर दुःषन्त ने अपने वदन-मारुत से उसे निर्मल की थी यह प्रसंग कृतिनिष्ठ आन्तरिक सम्भावना-युक्त है या नहीं ? यही दो प्रसंग मुख्य रूप से विवेचनीय हैः— देवनागरी वाचना के लघुपाठ में शकुन्तला ने मृणालवलय हाथ में पहना है ऐसा स्पष्ट उल्लेख तीसरे अङ्क के आरम्भ में ही है, और कवि ने कहा भी है कि वह वलय 'शिथिल' हुआ है[20]। अतः उसे नीचे गिर जाने की बात सर्वथा अपेक्षित थी। कालिदास जैसे महाकवि की नाट्यकृति में जो कुछ भी कहा जाता है वह सप्रयोजन ही होता है। अतः दुःषन्त ने उस शिथिलित मृणाल-वलय को पहनाया हो ऐसा प्रसंग कालिदास के लिये वर्ण्य विषय बनता ही है। तथा वह शिथिल था, उसी लिये फिर से वह गिरा हुआ दुःषन्त के हाथ में आ जाता है ऐसा अङ्क के अन्त में कहा गया है वह भी समुचित है। और, जो बात अङ्क के आदि और अन्त में उल्लिखित है वह अङ्क के मध्य भाग में भी हो सकती है – ऐसा मानना तर्क-विरुद्ध नहीं होगा। एवमेव, महाकवि ने केवल शकुन्तला के ही शिथिलित मृणालवलय का निर्देश किया है ऐसा नहीं है। उन्होंने तो विरही दुःषन्त के हाथों से बार बार नीचे उतर जाने वाले कनकवलय का भी निर्देश किया है[21]। दूसरा, यहाँ नगर-संस्कृति के नायक के हाथ में कनकवलय का होना और आरण्यक-संस्कृति की नायिका के हाथों में मृणाल-वलय का होना वर्णित करना – उसमें हम एक संतुलित कलाकृति का लक्षण भी देख सकते है।

इस मृणाल-वलय के प्रसंग का मूलगामी पाठ में होना एक अन्य आन्तरिक सम्भावना से भी समर्थित होता है उसकी ओर भी सत्यान्वेषी साहित्यरसिकों का ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक हैः--- जिस लता-वलय में दुःषन्त-शकुन्तला का एकान्त मिलन होता है वहाँ

---

[20] स्तनन्यस्तोशीरं शिथिलित-मृणालैकवलयं प्रियायाः सावाधं किमपि कमनीयं वपुरिदम् । शाकु. 3-6 (राघवभट्ट, पृ. 89)

[21] अनभिलुलितज्याघाताङ्कं मुहुर्मणिबन्धनात् कनकवलयं स्रस्तं स्रस्तं मया प्रतिसार्यते ।। शाकु. 3-10 (राघवभट्ट, पृ. 97)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

आरम्भ में शकुन्तला लता-वलय से बहार चली जाती है। तब दुःषन्त शकुन्तला के मणिबन्धन से गलित हुए मृणालवलय को देखता है, जो उसे " हृदयस्य निगडम् इव " लगता है[22], उसको ऊठा लेता है और अपने गले लगाता है। तब उस वलय को वापस लेने के बहाने शकुन्तला लता -वलय में पुनःप्रविष्ट होती है। यहाँ प्रिया शकुन्तला को देखते ही दुःषन्त सहर्ष बोलता है:- "अये, जीवितेश्वरी मे प्राप्ता।" इसके बाद, दुःषन्त मृणाल-वलय को वापस लौटाने के लिये एक अभिसन्धि (शर्त) रखता है कि वह उसके हाथ में पहनाये, जो शकुन्तला मंजूर रखती है। दुःषन्त ने जब शकुन्तला के हाथ में उसे पहनाया तब शकुन्तला के मुख से " त्वरताम् त्वरताम् आर्यपुत्रः। " ऐसा सम्बोधन निकल जाता है। कङ्कण-स्वरूप मृणाल-वलय पहनाने के अवसर पर शकुन्तला के मन में दुःषन्त के लिये पतिभाव प्रकट हुआ हो यह अत्यन्त स्वाभाविक है। इस दृष्टि से, मृणाल-वलय प्रसंग में नायक-नायिका ने परस्पर जो "जीवितेश्वरी" और "आर्यपुत्रः" कहा है, वह क्षण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि आगे चल कर जब षष्ठाङ्क में (दुःषन्त-नामधेयाङ्किता मुद्रिका मिल जाने के बाद) कदाचित् अन्तःपुर की अन्य स्त्रियों के सामने विरही दुःषन्त के मुख से " गोत्र-स्खलन " हो जाता है ऐसा निरूपण आता है[23] तो वह बिलकुल निराधार है ऐसा नहीं लगता है।

किन्तु देवनागरी एवं दाक्षिणात्य वाचना के पाठ में तो यह मृणाल-वलय का प्रसंग नहीं है। अतः वहाँ षष्ठाङ्क में गोत्र-स्खलन का निर्देश आने पर उसका कोई पूर्व-निर्दिष्ट आधार नहीं मिलता है। कहने का तात्पर्य यही है कि बंगाली वाचना में मृणाल-वलय का प्रसंग है और उस प्रसंग के निमित्त से दोनों के चित्त में जो सहज दाम्पत्यभाव प्रकट हुआ था उससे ही षष्ठाङ्क में दुःषन्त से अनजान में होनेवाले गोत्र-स्खलन की स्वाभाविकता प्रतीतिकर बनती है। और इस तरह से

---

22 इस श्लोक को वर्द्धमान ने गणरत्नमहोदधि (12वीं शती)में उद्धृत किया है।

23 दाक्षिण्येन ददाति वाचमुचिताम् अन्तःपुरेभ्यो यदा, गोत्रेषु स्खलितस्तदा भवति च व्रीडाविलक्षिश्चिरम्। शाकु. 6-5 (राघवभट्ट, पृ.195)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

षष्ठाङ्क में आनेवाला गोत्र-स्खलन का निर्देश हमारे लिये मृणाल-वलय का समर्थक प्रमाण बनता है।।

[8]

अब तृतीयाङ्क में जो दूसरा विवादास्पद प्रसंग है उसकी पाठ-समीक्षा की जा रही है:-- शकुन्तला की दृष्टि पुष्परज से कलुषित होने पर दुःषन्त उसे अपने वदन-मारुत से निर्मल कर देता है – उस प्रसंग की मौलिकता कृति-निष्ठ अन्तःसाक्ष्य से समर्थित होती है या नहीं ? इस विषय में सम्भवतः किसी ने नहीं सोचा है। यहाँ, शकुन्तला के नेत्र पुष्परज से कलुषित होने जैसे कोई प्रसंग की हम अपेक्षा रख सकते है या नहीं ? यही बात प्रथमतः विचारणीय है:—प्रथमाङ्क में वृक्षसेचन के दौरान परिश्रान्त हुई शकुन्तला का दुःषन्त ने वर्णन किया है, इस श्लोक में कहा गया है कि, स्रस्तं कर्णशिरीषरोधि वदने घर्माम्भसां जालकं, बन्धे स्रंसिनि चैकहस्तयमिताः पर्याकुला मूर्धजाः (शाकु. 1-26, राघवभट्ट, पृ. 47) अर्थात् शकुन्तला अपने कर्णों में शिरीष आदि पुष्पों को लगाती थी। और इसी लिये षष्ठाङ्क में शकुन्तला का चित्र अंकित करते हुए दुःषन्त ने फिर से कहा भी है कि – कृतं न कर्णार्पितबन्धनं सखे, शिरीषमागण्डविलम्बिकेसरम्। न वा शरच्चन्द्रमरीचिकोमलं मृणालसूत्रं रचितं स्तनान्तरे।। (शाकु. 6-18, राघवभट्ट, पृ. 213) इस तरह शकुन्तला अपने कानों में प्रसाधन के रूप में पुष्प लगाती थी, और इसी लिये कदाचित् उसके नेत्र में पुष्परेणु गिरने की सम्भावना (एवं अपेक्षा) तो थी ही। यह बात कृति-निष्ठ वाक्यों से ही समर्थित होती है। लेकिन यहाँ ऐसा प्रश्न ऊठाया जा सकता है कि क्या ऐसा कोई प्रसंग महाकवि ने ही अपने हाथों से लिखा होगा ? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये उच्च स्तरीय समीक्षा को मान्य हो ऐसा कोई प्रमाण देना आवश्यक है।।

महाकवि कालिदास ने इस नाट्यकृति की दृश्यावली में सर्वत्र एक रूप के सामने दूसरा प्रतिरूप खडा करने की जो कलात्मक सर्जनविधा का साद्यन्त विनियोग किया है उसकी ओर सब का ध्यान

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

आकृष्ट करने की जरूरत है। जैसा कि – 1. प्रथमाङ्क में मृगया-विहारी दुःषन्त का कण्वमुनि के आश्रम में प्रवेश होते ही – न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन्... शब्द सुनाई पडते है, वैसे ही सप्तमाङ्क के आरम्भ में " मा चापलम् कुरु। कथं गत एवात्मनः प्रकृतिम्।" शब्द नेपथ्य से आते है। यहाँ प्रथमाङ्क में शिकारी दुःषन्त का जो एक रूप प्रस्तुत किया था, उसका ही दूसरा प्रतिरूप सिंहबाल के साथ खेल रहे सर्वदमन का खडा किया गया है। 2. प्रथमाङ्क में भ्रमर-बाधा प्रसंग वर्णित करने के बाद, कवि ने षष्ठाङ्क में वही दुःषन्त भ्रमरोपदेश करता है[24] ऐसा भी निरूपण किया है। 3.द्वितीयाङ्क के अन्त में यज्ञक्रिया में राक्षसोपद्रव को संयमित करने के लिये दुःषन्त प्रस्थान करता है – ऐसा जो एक रूप (दृश्य) प्रस्तुत किया है, उसके सामने (प्रतिदृश्य के रूप में) षष्ठाङ्क में मातलि ने मेघप्रतिच्छन्द प्रासाद में विदूषक को पकड लिया है और दुःषन्त उसे छुडाने के लिये शरासन धारण करता है। 4. तृतीयाङ्क में महाकवि ने संभोग-शृङ्गार का निरूपण किया है, तो षष्ठाङ्क में उसके प्रतिरूप में विप्रलम्भ-शृङ्गार का वर्णन किया है। और इन दोनों के बीच में, चतुर्थाङ्क में पितृ-वात्सल्य का अनन्य एवं अभूतपूर्व आलेखन किया है। 5. तृतीयाङ्क में शकुन्तला अपनी अस्वस्थ शरीरदशा का रहस्योद्घाटन करते हुए कहती है कि – सखि, यतः प्रभृति मम दर्शनपथम् आगतः स तपोवन-रक्षिता राजर्षिः, तत आरभ्य तद्गतेनाभिलाषेणैतद् अवस्थास्मि संवृत्ता। यहाँ दुःषन्त सहर्ष बोलता है कि श्रुतं श्रोतव्यम्। इस दृश्य के सामने, प्रतिदृश्य के रूप में पञ्चमाङ्क में जब शकुन्तला दुःषन्त की अंगुठी नहीं दिखा सकती है तब वह एकदा घटित मृगपोतक की बात सुनाने का प्रस्ताव रखती है। तब यहाँ दुःषन्त शकुन्तला का उपहास करता हुआ कहता है कि – श्रोतव्यम् इदानीं संवृत्तम्। इस तरह महाकवि ने सम्पूर्ण

---

[24] एषा कुसुमनिषण्णा तृषितापि सती भवन्तमनुरक्ता।
प्रतिपालयति मधुकरी न खलु मधु विना त्वया पिबति ॥ शाकु. 6-19 (राघवभट्ट, पृ. 214)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

कृति में एक रूप के सामने दूसरा प्रतिरूप (एक दृश्य के सामने दूसरा प्रतिदृश्य) खडा करने की स्पृहणीय निरूपण-शैली का मार्ग अपनाया है। इस निरूपण-शैली भी हमारे लिये कृति-निष्ठ अन्तःसाक्ष्य बन सकती है, और उसके आधार पर बंगाली (और मैथिली) वाचना के तृतीयाङ्क में शकुन्तला की दृष्टि कर्णोत्पल रेणु से कलुषित होने का जो प्रसंग वर्णित किया है उसका समर्थन किया जा सकता है। जैसे कि – तृतीयाङ्क में दुःषन्त ने अपने वदन-मारुत से शकुन्तला की दृष्टि निर्मल कर दी थी – उसी एक दृश्य के सामने, षष्ठाङ्क में कवि ने दूसरा प्रतिदृश्य भी खडा किया है। धीवर के पास से जब शकुन्तला के हाथ से गिरी मुद्रिका मिल जाती है और दुःषन्त को शकुन्तला का पुनःस्मरण हो जाता है तब शकुन्तला का चित्रांकन करते हुए वह एक श्लोक बोलता है:—

कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी,
पादास्तामभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरोः पावनाः।
शाखालम्बित-वल्कलस्य च तरोर्निर्मातुम् इच्छाम्यधः, शृङ्गे
कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम्।। 6-17

इसमें कहा गया है कि मुझे (दुःषन्त को) इस चित्र में बह रही मालिनी नदी की बालुका में बैठा एक हंस-मिथुन आकारित करना है। हिमालय की उपत्यका के पास में बैठे हरिणों के समूह को बनाना है। वृक्ष की डालियों पर कुछ वल्कल वस्त्र टाँगे हो एवं उस वृक्ष के अधो भाग में कृष्णमृग के शृङ्ग पर अपना वाम-नेत्र खूजलाती हुई एक हरिणी भी चित्रित करने की चाहत हो रही है। - यहाँ "कण्डूयमानां मृगीम्" का जो चित्र बनाने की इच्छा प्रकट की गई है वह निरतिशय व्यञ्जना पूर्ण है। षष्ठाङ्क में वर्णित इस प्रसंग का सम्बन्ध स्पष्ट रूप से तृतीयाङ्क में निरूपित शकुन्तला के नेत्र कलुषित होने के प्रसंग के साथ ही है। वहाँ पर दुःषन्त ने जब अपने वदन-मारुत से शकुन्तला की दृष्टि को निर्मल कर देने का प्रस्ताव रखा था, तब शकुन्तला ने कहा था कि मेरे मन में तुम्हारे लिये विश्वास नहीं है। (क्योंकि सम्भव है कि दुःषन्त कुछ अधिक भी कर सकता है)। दुःषन्त ने इसी तृतीयाङ्क के

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रसंग को ही स्मरण-पट में रख कर एक प्रतिदृश्य के रूप में, यह " कण्डूयमानां मृगीम् " का चित्र बनाने की इच्छा प्रकट की है। इस तरह एक दृश्य के सामने दूसरा प्रतिदृश्य खडा करने की जो निरूपण- शैली समग्र कृति में बार बार दिखाई देती है उसको तार्किक रूप से ही आन्तरिक सम्भावना के रूप में स्वीकारना चाहिये। अतः तृतीयाङ्क में शकुन्तला का नेत्र कलुषित होने पर दुःषन्त ने उसे अपने वदन-मारुत से स्वच्छ कर दिया था ऐसा एक प्रसंग जो बंगाली वाचना में निरूपित किया गया है, वह प्रक्षिप्त नहीं है, बल्कि सर्वथा मौलिक है – ऐसा मानने को हम बाध्य हो जाते है।।

[9]

यहाँ जो कृति-समीक्षा से पाठ-समीक्षा करने का उपक्रम रखा है उसमें महाकवि की प्रतीक-योजना का भी विश्लेषण करना अतीव उपकारक सिद्ध होगा। जैसा कि – कवि ने शकुन्तला के लिये मुख्य रूप से तीन प्रतीकों का विनियोग किया गया है:—1. हरिणी, 2. कमल और 3. शकुन्त (पक्षी)। महाकवि कालिदास ने इन तीनों प्रतीकों का साद्यन्त उपयोग करते हुए ही नाट्यकार्य का विकास प्रदर्शित किया है[25]। प्रथम उदाहरण के रूप में शकुन्तला के लिये हरिणी का प्रतीक जो समग्र कृति में प्रयुक्त किया गया है वह तो सुविदित है। लेकिन इस प्रतीक के द्वारा महाकवि ने नाट्यकार्य का कैसे विकास होता हुआ वर्णित किया है वह ज्ञातव्य है। शकुन्तला के लिये प्रयुक्त प्रतीक यदि हरिणी है, तो हरिणी को किसी शिकारी की अपेक्षा होगी ही। वह शिकारी यहाँ दुःषन्त है, और नाटक का आरम्भ ही मृगया-विहारी दुःषन्त के प्रवेश से होता है। किन्तु नाटक का आरम्भ जिस स्थिति से शूरु होता है, उसमें आगे चल कर बहुत कुछ परिवर्तन / विकास आ गया है ऐसा महाकवि दिखाना चाहते है। दुःषन्त शिकारी बनके तो

---

[25] इस सन्दर्भ में " अभिज्ञानशकुन्तल की प्रतीक-योजना में प्रतिबिम्बित नाट्यकार्य" शीर्षक से हमने एक दूसरा आलेख लिखा है ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

कदापि शकुन्तला स्वरूपा हरिणी को प्राप्त नहीं कर सकता है – ऐसा महाकवि का तत्त्वदर्शन है। क्योंकि सौन्दर्य को प्राप्त करने के लिये स्वयं को भी सौन्दर्य ही बनना होता है। अतः हरिणी को (हृदय से) प्राप्त करने के लिये शिकारी को भी हरिण बनना पडेगा यह बात स्पष्ट है। षष्ठाङ्क के उपर्युक्त श्लोक में कहा गया है कि दुःषन्त अब विश्वसनीय हरिण बनके हरिणी के सामने खडा रहना चाहता है, जिससे उसके शृङ्ग पर वह हरिणी आश्वस्त हो के अपने वाम-नयन को खूजला सके।

यहाँ दूसरा ध्वनि यह है कि (पञ्चमाङ्क के) शकुन्तला-प्रत्याख्यान प्रसंग में मुद्रिका नहीं मिलने पर शकुन्तला ने दुःषन्त को एकदा एकान्त में हुई बात का स्मरण दिलाने की कोशिश की। वह कहती है कि एकबार नवमालिका के मण्डप में दुःषन्त के हाथ का पानी दीर्घापाङ्ग नामक मृगपोतक ने नहीं पिया, तब वही जलपात्र शकुन्तला ने अपने हाथ में लिया और दीर्घापाङ्ग ने तत्क्षण उसमें से जल पी लिया। इसको देख कर दुःषन्त ने उपहास करते हुए कहा थाः—सभी समान गन्धवाले समान गन्धवाले में ही विश्वास करते है। आप दोनों जंगल के ही तो निवासी हैं[26]। यहाँ पर दुःषन्त ने अपने आपको नागर कहा और शकुन्तला को आरण्यक कही। इस विषमता को जब तक नहीं मिटाई जाय तब तक दोनों के दाम्पत्य में सुसंगतता कैसे सिद्ध हो सकती है ? दुःषन्त जब तक हरिण बनके खडा न रहे, अर्थात् वह भी शकुन्तला का सगन्ध-सखा न बने तब तक दोनों का मिलन होना महाकवि को मंजूर नहीं है। अतः दुःषन्त जिस चित्र को आलिखित करने जा रहा है उसमें तरु की छाया में खडा हरिण ओर कोई नहीं है, वह स्वयं दुःषन्त ही है। हरिणी स्वरूपा शकुन्तला को

---

[26] शकु. – नन्वेकस्मिन् दिवसे नवमालिकामण्डपे नलिनीपत्रभाजनगतमुदकं तव हस्ते संनिहितमासीत् । राजा – शृणुमस्तावत् ।। शकु. – तत्क्षणे स मे पुत्रकृतको दीर्घापाङ्गो नाम मृगपोतक उपस्थितः । त्वयायं तावत् प्रथमं पिबत्वित्यनुकम्पिनोपच्छदित उदकेन । न पुनस्ते परिचयाद्धस्ताभ्याशमुपगतः । पश्चात्तस्मिन्नेव मया गृहीते सलिले अनेन कृतः प्रणयः । तदा त्वमित्थं प्रहसितो सि – सर्वः सगन्धिपु विश्वसिति । द्वावप्यारण्यकौ इति ।। शाकु.5 (राघवभट्टः, पृ. 173)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

वामाङ्गी के रूप में प्राप्त करने की योग्यता शिकारी में नहीं थी, वह तो हरिण बनने से ही सिद्ध होगी – यह बात संकल्पित चित्र का वर्णन करते हुए दुःषन्त ने गहेरी मार्मिकता से व्यक्त की है।।

[10]

बंगाली वाचना के तृतीयाङ्क का विस्तृत शृङ्गारिक अंश प्रक्षिप्त नहीं है, किन्तु मौलिक है – यह दिखाने के लिये यहाँ जो चर्चा उपस्थापित की गई है उसके समर्थन में अब केवल दो बिन्दु जोडना अवशिष्ट हैः 1. मृणाल-वलय प्रसंग एवं पुष्परेणु से शकुन्तला का नेत्र कलुषित होने का प्रसंग परस्पर से स्वतन्त्र नहीं है। बल्कि मृणाल-वलय पहनाने के प्रसंग में ही अत्यन्त स्वाभाविक रूप से दूसरे प्रसंग का अवतार हो जाता है। और इस दूसरे प्रसंग के अनुसन्धान में ही गौतमी का प्रवेश भी सहज रूप से अन्वित हो जाता है। कहने का तात्पर्य यही है कि ये दोनों प्रसंग परस्पराश्लिष्ट है। तथा तार्किक रूप से पूर्वापर क्रम में सुग्रथित होने से, किसी ने इन दोनों को उत्तरवर्ती काल में चिपकाये है ऐसा नहीं लगता है। 2. दुःषन्त – शकुन्तला का सहचार जो बंगाली पाठ में निरूपित किया गया है उसको देख कर अनेक साहित्यरसिकों ने ऐसा अभिप्राय व्यक्त किया है कि यहाँ शकुन्तला प्रगल्भ दिखती है, एक नादान – भोलीभाली निसर्ग कन्या नहीं लगती है[27]। अतः ये दोनों प्रसंग कालिदास की कलम का परिणाम नहीं हो सकता। किन्तु देवनागरी और दाक्षिणात्य वाचना के लघुपाठ में जो शकुन्तला वर्णित की गई है वह भी नितान्त रूप में व्यवहार जगत् से अनभिज्ञ भोली कन्या है ऐसा निरूपण नहीं है। वहाँ पर भी दोनों सखियाँ जब दुःषन्त को शकुन्तला का स्वीकार करके उनके जीवन को अवलम्बन देने की

---

[27] वंगीय पाठ में प्रथम मिलन में ही शकुन्तला अठखेलियाँ करती दिखाई गई है जो कालिदास की प्रवृत्ति के विरुद्ध है (रेवाप्रसाद, 2004) । - कालिदासः अपनी बात, (भारतीय दृष्टि), डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी, वाराणसी, 2004, पृ. 54. यद्यपि परिशिष्ट में दिये गये बंगाली पाठ को देखते हुए यह अभिप्राय पुनश्चिन्य है । क्योंकि यहाँ शकुन्तला की प्रवृत्ति अठखेलियाँ शब्द के योग्य नहीं लगती है ।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

बिनती करती है, तब शकुन्तला ने तुरन्त कहा है कि – हला, किमन्तःपुरविरहपर्युत्सुकस्य राजर्षेरुपरोधेन। अर्थात् अली, अन्तःपुर की रानियों के विरही राजर्षि को यहाँ रोकने से क्या फायदा ? शकुन्तला, जो प्रायः मौन रहती है उसने मौके की क्षण पर तो दुःषन्त की सम्पूर्ण परीक्षा हो जाय ऐसा प्रश्न कर ही लिया था – यह क्षण स्मर्तव्य है। यहाँ पर शकुन्तला की अन्यथा अव्यक्त प्रगल्भता एक क्षण के लिये विद्युत् की लकीर जैसी चमक जाती है, तो उसको देखते हुए बंगाली वाचना में वर्णित नायक-नायिका का शृङ्गारपूर्ण सहचार अस्वाभाविक या अनपेक्षित नहीं लगता है।।

[11]

कृति-निष्ठ आन्तरिक सम्भावना से तृतीयाङ्क के विस्तृत शृङ्गारिक पाठ्यांश की मौलिकता का समर्थन अवश्य हो सकता है। लेकिन बंगाली वाचना के इस बृहत्पाठ में जो कुछ भी उपलब्ध होता है वह सम्पूर्णतया ग्राह्य है – ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि डॉ.रिचार्ड पिशेल एवं डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल ने बंगाली वाचना का जो पाठ प्रकाशित किया है उसमें भी ऐसे अनेक श्लोक है जिसकी भी कृति-निष्ठ आन्तरिक सम्भावना के मानदण्ड से परीक्षा करने की आवश्यकता है। उदाहरण के रूप में एक श्लोक को देखते हैः— (बंगाली वाचना में) दुःषन्त तृतीयाङ्क के आरम्भ में कामदेव को सम्बोधन करता हुआ बोलता है –

कुतस्ते कुसुमायुधस्य सतस्तैक्ष्ण्यमेतत्। (स्मृत्वा) आं ज्ञातम्।
अद्यापि नूनं हरकोपवह्निनस्त्वयि ज्वलत्यौर्व इवाम्बुराशौ।
त्वमन्यथा मन्मथ मद्विधानां भस्मावशेषः कथमेवमुष्णः।। 3-3।।

इस श्लोक के बाद, तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दोः .... श्लोक आता है।

आगे चल कर मृणालवलय पहनाते हुए दुःषन्त ने शकुन्तला के हस्त को अपने हाथ में लिया है। वहाँ शकुन्तला के हस्त का स्पर्श होते ही दुःषन्त जो श्लोक बोलता है वह इस तरह का हैः—

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा – (शकुन्तलाया हस्तमादाय) अहो स्पर्शः।

हरकोपाग्निदग्धस्य दैवेनामृतवर्षिणा।
प्ररोहः संभृतो भूयः किं स्वित्कामतरोरयम्।। 3-34।।

यहाँ पर एक ही अङ्क में दो बार हरकोपवह्नि / हरकोपाग्नि शब्दों से भगवान् शङ्कर के तृतीय नेत्राग्नि से जले कामदेव का निर्देश है, जो स्पष्ट रूप से एक ही विचार की पुनरुक्ति ही है। कविकुलगुरु की वाणी में यह दोष रूप ही प्रतीत हो रहा है। अतः इन दोनो में से कोई एक श्लोक प्रक्षिप्त होगा – यह निश्चित है। यहाँ आन्तरिक सम्भावना के रूप में एक ही तर्क है कि महाकवि एक ही विचार की पुनरुक्ति नहीं करते है। सूक्ष्मेक्षिका से देखने पर दूसरी भी पुनरुक्ति यहाँ यह है कि अद्यापि नूनम् .... से (3-3) कामदेव को उपालम्भ देने के बाद, फिर से तव कुसुमशरत्वम् ... के द्वारा भी वही भाव प्रदर्शित किया गया है। यहाँ 3-3 के रूप में जो श्लोक है वह प्रक्षिप्त होगा। क्योंकि 3-34 के रूप में जो श्लोक है वह मृणाल-वलय के प्रसंग में पूर्ण रूप से समुचित लगता है।।

देवनागरी एवं दाक्षिणात्य वाचना के पाठ में मृणाल-वलय प्रसंग को हटाया गया है, इस लिये 3-34 श्लोक भी निकाल दिया होगा। किन्तु हरकोपाग्नि .... शब्दों से कुमारसम्भव के प्रसंग का स्मरण होता है, इस लिये किसी अज्ञात व्यक्ति ने 3-3 (अद्यापि नूनम्....) श्लोक को उत्तरवर्ती काल में लिख कर उसे देवनागरी वाचना में प्रक्षिप्त कर दिया होगा। जिसका अनुकरण करते हुए कोई लिपिकार ने उसे बंगाली वाचना के पाठ में भी संमिश्रित कर दिया है। अन्यथा हरकोपवह्नि.. .(3-34) शब्दों से कामदेव-दहन का उल्लेख बंगाली पाठ में तो था ही। औचित्य की दृष्टि से सोचा जाय तो, मृणाल-वलय प्रसंग में आनेवाला 3-34 श्लोक ही मौलिक प्रतीत होता है।।

उपसंहारः-- उच्च स्तरीय पाठ-समीक्षा में कृतिनिष्ठ आन्तर सम्भावना का मूल्य सब से ऊँचा होता है। इस दृष्टि से यहाँ जो चर्चा प्रस्तुत की है उससे अभिज्ञानशकुन्तल की बृहत्पाठपरम्परा में बंगाली वाचना का पाठ मौलिक सिद्ध होता है। यद्यपि यह भी कहना चाहिये कि प्रॉफे.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

रिचार्ड पिशेल या डॉ. दिलीपकुमार कांञ्जीलाल ने बंगाली वाचना का जो समीक्षित पाठ प्रकाशित किया है, वही सर्वथा / यथावत् रूप में ग्राह्य है – ऐसा भी हम नहीं मान सकते है। क्योंकि बंगाली वाचना के पाठ में भी, अभी भी पर्याप्त प्रक्षेप दिखाई पडते है, जिसे हटाने की आवश्यकता है। तथापि यह भी सही है कि बंगाली वाचना के तृतीयाङ्क में जो विस्तृत शृङ्गारिक दृश्यावली मिलती है वह मौलिकता से सभर है। इसमें भी विशेष रूप से 1.मृणाल-वलय का प्रसंग एवं 2. शकुन्तला के कर्णोत्पल से कलुषित हुए नेत्र को दुःषन्त ने अपने वदन-मारुत से उसे स्वच्छ किया था यह प्रसंग कालिदास-प्रणीत हो सकता है – ऐसा बहुविध आन्तरिक सम्भावनाओं से सिद्ध होता है [28]।।

।। इति शम्।।

---------- ***** ----------

[28] राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन, नयी दिल्ली से प्रेरित एवं संस्कृत परिषत्, हैदरावाद के द्वारा आयोजित 'तत्त्ववोध' व्याख्यानमाला के अन्तर्गत (9 सप्टे. 2010) प्रस्तुत किया हुआ वक्तव्य ।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

परिशिष्ट – 1

देवनागरी वाचना में तृतीयाङ्क का शृङ्गारिक दृश्य

प्रियंवदा – (सदृष्टिक्षेपम्) अणसूए, जह एसो इदो दिण्णदिट्ठी उस्सुओ मिअपोदओ मादरं अण्णेसदि। एहि, संजोएम णं। [अनसूये, यथैष इतो दत्तदृष्टिरुत्सुको मृगपोतको मातरमन्विष्यति। एहि, संयोजयाव एनम्।] (इत्युभे प्रस्थिते।)

शकुन्तला – हला, असरण म्हि। अण्णदरा दो आअच्छदु। [हला, अशरणास्मि। अन्यतरा युवयोरागच्छतु।] उभे – पुहवीए जो सरणं सो तुह समीवे वट्टइ। [पृथिव्या यः शरणं स तव समीपे वर्तते।] (इति निष्क्रान्ते।)

शकुन्तला – कहं गदाओ एव्व ? [कथं गते एव ?।]

राजा – अलमावेगेन। नन्वयमाराधयिता जनस्तव समीपे वर्तते।

किं शीतलैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातान्
संचारयामि नलिनीदलतालवृन्तैः।
अङ्के निधाय करभोरु, यथासुखं ते
संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ।। 3- 18।।

शकुन्तला – ण माणणीएसु अत्ताणं अवराहइस्सं। [न माननीयेष्वात्मानमपराधयिष्ये।] (इत्युत्थाय गन्तुमिच्छति।)

राजा – सुन्दरि! अनिर्वाणो दिवसः। इयं च ते शरीरावस्था।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

उत्सृज्य कुसुमशयनं नलिनीदलकल्पितस्तनावरणम्।
कथमातपे गमिष्यसि परिबाधापेलवैरङ्गैः।। *।।3-19।।*

(इति बलादेनाम् निवर्तयति।)

शकुन्तला – पोरव! रक्ख अविणअं। मअणसंतत्तावि ण हु अत्तणो पहवामि। [पौरव, रक्षाविनयमम्। मदनसंतप्तापि न खल्वात्मनः प्रभवामि।]

राजा – भीरु! अलं गुरुजनभयेन। दृष्ट्वा ते विदितधर्मा तत्रभवान्न तत्र दोषं ग्रहीष्यति कुलपतिः। अपि च –

गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्यो राजर्षिकन्यकाः।
श्रूयन्ते परिणीतास्ताः पितृभिश्चाभिनन्दिताः।। *।।3-20।।*

शकुन्तला – मुंच दावं मं।भूओ वि सहीजणं अणुमाणइस्सं। [मुञ्च तावन्माम्। भूयोपि सखीजनमनुमानयिष्ये।]

राजा – भवतु, मोक्ष्यामि।

शकुन्तला – कदा। [कदा ?]

राजा –

अपरिक्षतकोमलस्य यावत्कुसुमस्येव नवस्य षट्पदेन।
अधरस्य पिपासता मया ते सदयं सुन्दरि, गृह्यते रसोऽस्य।।
।।3-21।।

(इति मुखमस्या समुन्नमयितुमिच्छति। शकुन्तला परिहरति नाट्येन।)

(नेपथ्ये)

चक्कवाकवहुए! आमंतेहि सहअरं। उवट्ठिआ रअणी। [चक्रवाकवधूः! आमन्त्रयस्व सहचरम्। उपस्थिता रजनी।]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला – (ससंभ्रमम्) पोरव! असंसअं मम सरीरवुत्तंतोवलंभस्स अज्जा गोदमी इदो एव्व आअच्छदि। जाव विडवंतरिदो होहि। [पौरव! असंशयं मम शरीरवृत्तान्तोपलम्भायार्या गौतमात एवागच्छति। यावद् विटपान्तरितो भव।]

राजा – तथा। (इत्यात्मानमावृत्य तिष्ठति)

(ततः ***प्रविशति*** पात्रहस्ता गौतमी, सख्यौ च)

सख्यौ – इदो इदो अज्जा गोदमी। [इत इत आर्या गौतमी।]

गौतमी – (शकुन्तलामुपेत्य) जादे, अवि लहुसंदावाइं दे अंगाइं। । [जाते, अपि लघुसंतापानि तेऽङ्गानि।]

शकुन्तला – अत्थि मे विसेसो। [अस्ति मे विशेषः।]

गौतमी – इमिणा दब्भोदएण णिराबाधं एव्व दे सरीरं भविस्सदि। (शिरसि शकुन्तलामभ्युक्ष्य।) वच्छे, परिणदो दिअहो। एहि, उडजं एव्व गच्छम्ह। [अनेन दर्भोदकेन निराबाधमेव ते शरीरं भविष्यति। वत्से, परिणतो दिवसः। एहि, उटजमेव गच्छामः।]

अभिज्ञानशाकुन्तलम्, राघवभट्टस्य टीकया सहितम्, पृ.106-111 डॉ. रिचार्ड पिशेल संपादित बंगाली वाचना का पाठ (पृ. 36 – 41)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रियंवदा – हला। चवलो क्खु एसो। णं णिवारिदुं एआइणी ण पारेसि। ता अहं पि सहाअत्तणं करइस्सं। (इत्युभे प्रस्थिते) [हला, चपलः खलु एषः। एनम् निवारयितुं एकाकिनी न पारयसि। तत् अहम् अपि सहायत्वम् करिष्यामि।]

शकुन्तला – इदो अण्णदो ण वो गन्तुं अणुमण्णे जदो असहाइणि म्हि। [इतः अन्यतः न वाम् गन्तुम् अनुमन्यसे। यतः असहायिनी अस्मि।]

उभे – (सस्मितम्) तुमं दाव असहाइणी जाए पुढवीणाधो समीवे वट्टदि। [त्वं तावत् असहायिनी ?, यस्याः पृथिवीनाथः समीपे वर्तते।]

।। इति निष्क्रान्ते।।

शकुन्तला – कथं गदाओ पिअसहीओ। [कथं गते प्रियसख्यौ।]

राजा – (दिशोऽवलोक्य) सुन्दरि, अलमावेगेन। नन्वयमाराधयिता जनस्ते सखीभूमौ वर्तते। तदुच्यताम्।

किं शीकरैः क्लमविमर्दिभिरार्द्रवातं
संचालयामि नलिनीदलतालवृन्तम्।
अङ्के निधाय चरणावुत पद्मताम्रौ,
संवाहयामि करभोरु यथासुखं ते।। 3-25।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला – ण माणणीएसुं अत्ताणअं अवराहइस्सं। (अवस्थासदृशमुत्थाय प्रस्थिता) [न माननीयेषु आत्मानम् अपराधयिष्यामि।]

राजा – (अवष्टभ्य) सुन्दरि, अपरिनिर्वाणो दिवसः। इयं च ते शरीरावस्था।

उत्सृज्य कुसुमशयनं नलिनीदलकल्पितस्तनावरणा।
कथमातपे गमिष्यसि परिबाधाकोमलैरङ्गैः।। ।।3-26।।

(इति वारयति)

शकुन्तला – मुञ्च मुञ्च। ण क्खु अत्तणो पहवामि। अध वा सहीमेत्तसरणा किं दाणिं एत्थ करइस्सं। [मुञ्च मुञ्च। न खलु आत्मनः प्रभवामि। अथवा सखीमात्रशरणा। किमिदानीम् अत्र करिष्यामि।]

राजा – धिक्। व्रीडितोऽस्मि।

शकुन्तला – ण क्खु अहं महाराअं भणामि, देव्वं उवालहामि। [न खलु अहम् महाराजं भणामि, दैवम् उपालभे]

राजा – अनुकूलकारि दैवं किमुपालभ्यते।

शकुन्तला – कथं दाणिं ण उवालहिस्सं जं मं अत्तणो अणीसं परगुणेहि लोहावेदि। [कथमिदानीं न उपालप्स्ये, यत् माम् आत्मनः अनीशाम् परगुणैर्लोभयति।]

राजा – (स्वगतम्)

अप्यौत्सुक्ये महति दयितप्रार्थनासु प्रतीपाः,
काङ्क्षन्त्योऽपि व्यतिकरसुखं कातराः स्वाङ्गदाने।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

आबाध्यन्ते न खलु मदनेनैव लब्धान्तरत्वाद्
आबाधन्ते मनसिजमपि क्षिप्तकालाः कुमार्यः।। ।।3-27।।

(शकुन्तला गच्छात्येव)

राजा – कथमात्मनः प्रियं न करिष्ये।

शकुन्तला – पोरव, रक्ख विणअं। इदो तदो इसीओ संचरन्ति। [पौरव, रक्ष विनयम्। इतस्ततः ऋषयः संचरन्ति।]

राजा – सुन्दरि, अलं गुरुजनाद् भयेन। न ते विदितधर्मा तत्रभवान् कण्वः खेदमुपयास्यति।

गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्योऽथ मुनिकन्यकाः।
श्रूयन्ते परिणीतास्ताः पितृभिश्चानुमोदिताः।। ।।3-28।।

(दिशोऽलोक्य) कथं प्रकाशं निर्गतोऽस्मि। (शकुन्तलां हित्वा पुनस्तैरेव पदैः प्रतिनिवर्तते।)

शकुन्तला – (पदान्तरे प्रतिनिवृत्य साङ्गभङ्गम्) पोरव, अनिच्छापूरओ वि संभासणमेत्तएण परिचिदो अअं जणो ण विसुमरिदव्वो। [पौरव, अनिच्छापूरकः अपि संभाषणमात्रकेण परिचितः अयं जनः न विस्मर्तव्यः]

राजा –

सुन्दरि, त्वं दूरमपि गच्छन्ती हृदयं न जहासि मे।
दिनावसानच्छायेव पुरोमूलं वनस्पतेः।। ।।3-29।।

शकुन्तला – (स्तोकान्तरं गत्वा आत्मगतम्) हद्धी हद्धी। इमं सुणिअ ण मे चलणा पुरोमुहा पसरन्ति। भोदु, इमेहि पज्जन्तकुरुवएहि ओवारिदसरीरा पेक्खिस्सं दाव से भावाणुबन्धं। (तथा कृत्वा

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

स्थिता) [हा धिक्, हा धिक्। इदं श्रुत्वा न मे चरणौ पुरोमुखौ प्रसरतः। भवतु, एभिः पर्यन्तकुरबकैः अपवारितशरीरा प्रेक्षिष्ये। तावत् अस्य भावानुबन्धम्।]

राजा – कथमेवं प्रिये अनुरागैकरसं मामुत्सृज्य निरपेक्षैव गतासि।

अनिर्दयोपभोग्यस्य रूपस्य मृदुनः कथम्।
कठिनं खलु ते चेतः शिरीषस्येव बन्धनम्।। ।।3-30।।

शकुन्तला – एदं सुणिअणत्थि मे विहवो गच्छिदुं। [एतत् श्रुत्वा नास्ति मे विभवः गन्तुम्।]

राजा – संप्रति प्रियाशून्ये किमस्मिन् करोमि। (अग्रतोऽवलोक्य) हन्त, व्याहतं गमनम्।

मणिबन्धनगलितमिदं संक्रान्तोशीरपरिमलं तस्याः।
हृदयस्य निगडमिव मे मृणालवलयं स्थितं पुरतः।। 3-31।।

(सबहुमानमादत्ते)

शकुन्तला – (हस्तं विलोक्य) अम्मो, दोव्वल्लसिढिलदाए परिब्भट्टं पि मुणालवलअं मए ण परिण्णादं। [अम्मो दौर्बल्यशिथिलतया परिभ्रष्टम् अपि मृणालवलयं मया न परिज्ञातम्।]

राजा – (मृणालमुरसि निक्षिप्य) अहो स्पर्शः।

अनेन लीलाभरणेन ते प्रिये विहाय कान्तं भुजमत्र तिष्ठता।
जनः समाश्वासित एष दुःखभाग् अचेतनेनापि सता न तु त्वया।।
।।3-32।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला – अदो वं असमत्थ म्हि विलम्बिदुं। भोदु, एदेणज्जेव अवदेसेण अत्ताणअं दंसइस्सं। (इत्युपसर्पति)

[अतः परम् असमर्थाऽस्मि विलम्बितुम्। भवतु एतेन एव अपदेशेन आत्मानं दर्शयिष्यामि।]

राजा – (दृष्ट्वा सहर्षम्) अये जीवितेश्वरी मे प्राप्ता। परिदेवितानन्तरं प्रसादेनोपकर्तव्योऽस्मि खलु देवस्य।

पिपासाक्षामकण्ठेन याचितं चाम्बु पक्षिणा।
नवमेघोज्झिता चास्य धारा निपतिता।। ।।3-33।।

शकुन्तला – (राज्ञः प्रमुखे स्थित्वा) अज्ज अद्धपथे सुमरिअ एदस्स हत्थब्भंसिणो मुणालवलअस्स किदे पडिणिउत्त म्हि। आचक्खिदं विअ मे हिअएण तए गहिदं ति। ता णिक्खिव एदं मा मं अत्ताणअं च मुणिअणेसुं पआसइस्ससि। [आर्य अर्धपथे स्मृत्वा एतस्य हस्तभ्रंशिनः मृणालवलयस्य कृते प्रतिनिवृत्ता अस्मि। आख्यातमिव मे हृदयेन त्वया गृहीतमिति। तत् निक्षिप एतत्। मा माम् आत्मानं च मुनिजनेषु प्रकाशयिष्यसि।]

राजा – एकेनाभिसन्धिना प्रत्यर्पयामि।

शकुन्तला – केण उण। [केन पुनः।]

राजा – यदिदमहमेव यथास्थानं निवेशयामि।

शकुन्तला – (आत्मगतम्) का गदी।(इत्युपसर्पति) [का गतिः।]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा – इतः शिलापट्टकमेव संश्रयावः। (इत्युभौ परिक्रम्योपविष्टौ)

राजा – (शकुन्तलाया हस्तमादाय) अहो स्पर्शः।

हरकोपाग्निदग्धस्य दैवेनामृतवर्षिणा।
प्ररोहः संभृतो भूयः किं स्वित्कामतरोरयम्।। 3-34।।

शकुन्तला – (स्पर्शं रूपयित्वा) तुवरदु तुवरदु अज्जउत्तो। [त्वरताम् त्वरताम् आर्यपुत्रः।]

राजा – (सहर्षमात्मगतम्) इदानीमस्मि विश्वस्तः। भर्तुराभाषणपदमेतत्। (प्रकाशम्) सुन्दरि, नातिश्लिष्टः सन्धिरस्य मृणालवलयस्य। यदि तेऽभिप्रेतमन्यथा घटयिष्यामि।

शकुन्तला – जधा दे रोअदि। [यथा ते रोचते।]

राजा – (सव्याजं विलम्ब्य प्रतिमुच्य) सुन्दरि, दृश्यताम्।

अयं स ते श्यामलतामनोहरं विशेषशोभार्थमिवोज्झिताम्बरः।
मृणालरूपेण नवो निशाकरः करं समेत्योभयकोटिमाश्रितः।। ।
।।3-35।।

शकुन्तला – ण दाव ण पेक्खामि पवणुक्कम्पिणा कण्णुप्पलरेणुणा कलुसीकिदा मे दिट्ठी। [न तावत् एनं प्रेक्षे, पवनोत्कम्पिना कर्णोत्पलरेणुना कलुषीकृता मे दृष्टिः।]

राजा – (सस्मितम्) यदि मन्यसे अहमेनां वदनमारुतेन विशदां करिष्ये।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला – तदो अणुकम्पिदा भवे। किं उण ण दे वीससामि। [ततः अनुकम्पिता भवेयम्। किं पुनः न ते विश्वसिमि।]

राजा – मा मैवम्। नवो हि परिजनः सेव्यानामादेशात् परं न वर्तते।

शकुन्तला – अअं जेव अच्चुवआरो अविस्सासजणओ। [अयमेवात्युपचारोऽविश्वासजनकः।]

राजा – (स्वगतम्) नाहमेतं रमणीयं सेवावकाशमात्मनः शिथिलयिष्ये। (इति मुखमुन्नमयितुं प्रवृत्तः। शकुन्तला प्रतिषेधं रूपयन्ती विरमति।)

राजा – अयि मदिरेक्षणे, अलमस्मदविनयाशङ्कया। (शकुन्तला किञ्चिद् दृष्वावनतमुखी तिष्ठति)

राजा – (अङ्गुलीभ्यां मुखमुन्नमय्यात्मगतम्)

चारुणा स्फुरितेनायमपरिक्षतकोमलः।
पिपासतो ममानुज्ञां ददातीव प्रियाधरः।। ।।3-36।।

शकुन्तला – पड़िण्णादमन्थरो विअ अज्जुउत्तो। [प्रतिज्ञामन्थरः इवार्यपुत्रः।]

राजा – सुन्दरि, कर्णोत्पलसंनिकर्षादीक्षणसादृश्यमूढोऽस्मि। (इति मुखमारुतेन चक्षुः सेवते)

शकुन्तला – भोदु, पइदित्थदंसण म्हि संवृत्ता। लज्जामि उण अणुवआरिणी पिअआरिणो अज्जउत्तस्स। [भवतु, प्रकृतिस्थदर्शनाऽस्मि संवृत्ता।]

राजा – सुन्दरि, किमन्यत्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

इदमुपकृतिपक्षे सुरभि मुखं ते मया यदाघ्रातम्।
ननु कमलस्य मधुकरः संतुष्यति गन्धमात्रेण ।।।। 37।।

शकुन्तला – असंतोसे उण किं करेदि। [असंतोषे पुनः किं करोति।]

राजा – इदमिदम्। (इति व्यवसितो वक्त्रं ढौकते।)

।। नेपथ्ये।।

चक्कवाअवहु। आमन्तेहि सहअरं। उवत्थिदा रअणी। [चक्रवाकवधु, आमन्त्रय सहचरम्। उपस्थिता रजनी।]

शकुन्तला – (कर्णं दत्वा ससंभ्रमम्) अज्जउत्त एसा खु मम वुत्तन्तोवलम्भणणिमित्तं अज्जा गोदमी आअदा। ता विडवन्तरिदो होहि। [आर्यपुत्र, एषा खलु मम वृत्तान्तोपलम्भननिमित्तम् आर्या गौतमी आगता। तत् विटपान्तरितः भव।]

राजा – तथा। (इत्येकान्ते स्थितः)

गौतमी – (प्रविश्य पात्रहस्ता गौतमी) जाद, इदं सन्तिउदअं। (दृष्ट्वा समुत्थाय) असुत्था इध देवदासहाइणी चिट्ठसि। [जात, इदम् शान्त्युदकम्। अस्वस्था इह देवतासहायिनी तिष्ठसि।]

शकुन्तला – इदाणिं जेव पिअंवदाअणुसूआओ मालिणिं ओदिण्णाओ। [इदानीमेव प्रियंवदानुसूये मालिनीम् अवतीर्णे।]

गौतमी – (शान्त्युदकेन शकुन्तलाम् अभ्युक्ष्य) जाद, णिराबाधा मे चिरं जीव। अवि लहुसंतावाइं दे अङ्गाइं।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

[जात, निराबाधा मे चिरम् जीव। अपि लधुसंतापानि तेऽङ्गानि।] (इति स्पृशति)

शकुन्तला – अज्जे, अत्थि विसेसो। [आर्ये, अस्ति विशेषः।]

गौतमी – परिणदो दिअसो। ता एहि। उडअं जेव गच्छम्ह।। [परिणतः दिवसः। तत् एहि उटजमेव गच्छावः]

Works Cited

B.K.Thakore. (1922). *The Text of the S'akuntala.* Bombay: D.B. Taraporewala Sons & Co.

Belvalkar, (1929). *Indian Studies in Honor of C.R.Lanman.* Cambridge: Harvard University Press.

Kanjilal, D. k. (1980). *A Reconstruction of the Abhijnanas'akuntalam.* Calcutta: Sanskrit College.

Pichel, R. (1876(First Ed) ,1922(Second Ed.)). *Kalidasa's S'akuntala.* Cambridge: Harvard University.

Ray, S. (1908, (1924, 1962)). *Abhijnanasakuntalam.* Calcutta.

S.K.Belvalkar. (1929). S'rigaric Elaboration in S'akuntala - Act-3. *Indian Studies inHonor of C.Ṛ. Lanman, Harvard Uni. Press* , 187 - 192.

एस. के., बेलवलकर (1923). Th application of a few canons of Textual Criticism to Kalidasa' S'akuntala. *Asia Major,Leipzig - 2,1,* , 79 - 104.

बेलवलकर, ए. क. (1965). *अभिज्ञानशाकुन्तलम्.* नयी दिल्ली,: साहित्य अकादेमी.

राघवभट्ट. (2006). *अभिज्ञानशाकुन्तल (अर्थद्योतनिका टीका के साथ)* . नयी दिल्ली: राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.
ISBN - 978-93-80171-13-5

लेखक परिचय

नाम : प्रो. वसन्तकुमार म. भट्ट (जन्म-तिथिः 21-02-53, अहमदाबाद, गुजरात)

शैक्षणिक उपधियाँ : एम.ए. पीएच. डी., स्नातकोत्तर डिप्लोमा इन लिंग्विस्टीक्स (गुजरात युनिवर्सिटी)

शास्त्राभ्यास : पं. बालकृष्ण पञ्चोली गुरुचरणानां सन्निधौ पाणिनीय व्याकरणस्य विशेषाध्ययनम्।

स्नातकोत्तर विभाग में अध्यापन कार्य : 1. संस्कृत-विभाग, सरदार पटेल युनिवर्सिटी, वल्लभविद्यानगरम् गुजरात राज्य, (1978-1984) 2. प्रो.एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, भाषा साहित्य भगवनम्, गुजरात युनिवर्सिटि, अहमदाबाद 380009 (1984 से अद्यावधि) एवञ्च निदेशक, भाषा-साहित्य भवन, (2004 से) तथा कार्यकारी निदेशक, एज्युकेशनल मल्टी-मिडिया रिसर्च सेन्टर, गुजरात युनिवर्सिटी, अहमदाबाद।

पुस्तक-प्रकाशन : 1. संस्कृत वाक्य संरचना 2. पाणिनीय व्याकरण विमर्श 3. पाणिनीय व्याकरण - अर्थ, तन्त्र और सम्भाषण सन्दर्भ 4. संस्कृत पाण्डुलिपि एवं समीक्षित पाठ-सम्पादन विज्ञान 5. संस्कृत नाट्य-सृष्टि - स्वारज्य की खोज में। 6. निरुक्तम् (1,2,4 एवं 6) 7. उत्तररामचरितम् (शम्बूकवध की मिथक के नये अर्थघटन के साथ) 8. कारक-प्रकरण, 9. ऋग्वेद (मण्डल 7 एवं 10) सायणभाष्यसमेतः गुजराती-अनुवाद के साथ। तथा ऐतरेय ब्राह्मण के शुनःशेपाख्यान का अभिनव अर्थघटन। 10. धातुत्रयी एवं संस्कृत वाक्य प्रवेशिका (सी.डी. के साथ). कुल पुस्तकों की संख्या : 35, प्रकाशित शोध-आलेख : 150 से अधिक

पुरस्कार : 1. हरि ओम् आश्रम प्रेरित संशोधन लेख पुरस्कार 2. स्वामी श्रीभगवदाचार्य शताब्दी स्वर्णपदक, 3. डॉ. के.जी. नायक रिसर्च मेडल 4. अखिल भारतीय प्राच्य विद्या परिषद् में उत्तम शोध-आलेख के लिये वी. राघवन प्राईझ, तथा श्री डी.के जैन प्राईझ (1983 एवं 1980) 5. उत्तम प्राध्यापक एवं संशोधक के रूप में स्वीकृति के लिये ध केनेडियन वर्ल्ड एज्युकेशन फाउन्डेशन, केनेडा का श्रीरामकृष्ण संस्कृत पुरस्कार (2001)

शोध-मार्गदर्शन : 15 छात्रों को पीएच. डी. (संस्कृत) उपाधि के लिये सफल मार्गदर्शन दिया।

अध्यापन में नानीन्य : 50 से अधिक व्याख्यान पावर पॉइन्ट प्रेझन्टेशन के साथ तैयार किये है।

संस्कृत अकादमी

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानेन मानिता आदर्शशोधसंस्था

उस्मानिया विश्वविद्यालयः, हैदराबाद्

Vasant Bhatt Collection, Gujarat